

ॐ श्रीश्रीगुर-गौराङ्गी जयतः ॥

	स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोषजे ।	
धर्मः चन्द्रितः पुंसो विष्वकर्मण कथामुदः		चेष्टान्तेऽयं रति अम् पूर्व विष्व क्षेत्रम् ॥
००	अहैतुक्यप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति ॥	००
वर्ष ३ {	गौराब्द ४७१, मास—वामन ३, वार—क्षीरोदशायी शनिवार, ३२ ज्येष्ठ, सम्वत् २०१४, १५ जून १९५७	} संख्या १

## श्रीश्रीमद्नगोपाल-देवाष्टकम्

( श्रीक-विश्वानाथ-चक्रवर्ति-दत्तकुरु-विशिष्टम् )

मृदुतलारुद्य-जित-हृषिर दरद-प्रभं कुलिश कञ्जारि-दूर-कल्पस-फल चिह्नितम् ।  
हृदि ममाधाय निज-चरण-सरसी-रुहं, मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥१॥

मुखर-मण्डिर-नख-शिशिर-किरणावज्जी-विमल-मालाभिरनुपदमुदित-कान्तिभिः ।  
अवण-नेत्र-स्वसन-पथ-सुखद ! नाथ ! हे मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥२॥

मणिमयोद्योष-दर-कुटिलिमणि लोचनोच्चक्षन-चातुर्थ्य-चित्र लक्षणिमणि गणहयोः ।  
कनक-ताटङ्ग-हृचि-मधुरिमणि मउजयन् मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥३॥

अधर-शोणिमिन दर-हसित-सिलिमादिते विजित-माणिक्य-हृद-किरणगण-मणिहये ।  
निहितवंशीक ! जन-दुरवगम-जीक्ष ! हे मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥४॥

पदक-हारालि-पदकटक-नटकिछिणी-बलय-ताटङ्गमुख-निखिल-मणिभूषणैः ।  
 कलितनव्याभ ! निज-रुचित-तनु-भूषितैर्मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥२॥  
 उद्गुपकोटी-कदून-वदन-रुचि-पश्चावैर्मदनकोटी-मथन-नखर-कर-कन्दलैः ।  
 शुत्रहकोटी सदन-सदय-नयनेच्छणैर्मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥३॥  
 कृतनराकार ! भवमुख-विवृथ-सेवित ! युति-सुधा-सार ! पुरु-करण ! कमपि चितौ ।  
 प्रकटयन् प्रेमभरमधिकृत-सनातनं मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥४॥  
 तरणिजा-तीर-भुवि तरणि-कर-वारक-प्रियक-वण्डस्थमणिसदन-सहित-स्थित ।  
 जलितया सादृं मनुपद-रमित ! राधया मदनगोपाल ! निज सदनमनुरच माम् ॥५॥  
 मदनगोपाल ! तब सरसमिदमष्टक पठति यः सायमतिसरल-मतिराशु तम् ।  
 स्व-चरणाभ्योज-रति-रस-तरसि मज्जयम् मदनगोपाल ! निज-सदनमनुरच माम् ॥६॥

हे मदनगोपाल ! आपके अत्यन्त कोमल चरणोंके तलबोंकी ललाई अति मनोरम हिंगुलकी प्रभाको पराजित करती है । शंख, चक्र, वज्र, कमल, कलश और मत्स्य आदि चिन्होंसे अंकित अपने उन चरणकमलोंको मेरे हृदयमें स्थापित कर आप अपने निकट मेरी रक्षा करें ॥१॥

हे नाथ ! आप अपने युगल चरणोंके नूपुरोंकी अतिशय मधुर झङ्कारसे भक्तोंके कर्णोंको, नख चन्द्रावलीकी कान्तिसे उनके नेत्रको तथा चरणों तक लटकती हुई बनमालाके सौरभसे उनकी नासिकाको अतिशय सुख प्रदान किया करते हैं । हे मदनगोपाल ! आप इन सुखोंको प्रदान करते हुए अपने निकट मेरी रक्षा करें ॥२॥ हे मदनगोपाल ! अपने कुछ भुके हुए रत्नमणिडत मुकुटमें, इतस्ततः संचालित युगल नयनों की बाँकी चितवनोंमें तथा स्वर्णनिर्मित कर्णभूषणोंकी प्रभामण्डलसे मणिडत अपने मधुर युगल कपोलों में मेरे चित्तको निमग्न करते हुए आप अपने निकट मेरी रक्षा करें ॥३॥

प्रभो ! स्मितदास्य युक्त मुखके अतिशय उज्ज्वल तथा मोतियोंकी आभाको भी मात करने वाली मनोहर दशन-पंक्तियोंकी किरण-मालाओंसे सुशोभित आप अपने अरुण अधरपर वंशी धारण करते हैं तथा आपकी लीला साधारण जनोंके लिए दुर्ज्ञेय है । हे मदनगोपाल ! आप अपने निकट मेरी निरन्तर रक्षा करें ॥४॥ हे मदनगोपाल ! आपने अपने कण्ठभूषण, हारब्रेणी, पदवलय, कटिभूषण, कङ्कण तथा कर्णफूल आदि रत्नमय आभूषणोंसे अनिर्वचनीय शोभा धारण किया है । इन अतिशय उज्ज्वल आभूषणोंसे विभूषित आप अपने निकट मेरी निरन्तर रक्षा करें ॥५॥

हे मदनगोपाल ! आपके मुखचन्द्रकी कान्तिसे कोटिचन्द्र पराभूत हो जाते हैं, आपके कर-कमलोंके नवोदित अंकुर रूप नखोंकी प्रभासे कोटि-कोटि मदनका गर्व खण्डित हो जाता है, तथा कृपासे आद्रं हुए आपके युगल नयनोंकी चितवन कोटि-कोटि कल्पतरुका आलय स्वरूप है । आप अपने निकट निरन्तर मेरी रक्षा करें ॥६॥

हे नर शरीर धारण करनेवाले ! हे महादेव आदि देवतावृन्द द्वारा उपासित ! हे युति सुधासार ! हे भक्तोंकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले ! हे मदनगोपाल ! आप चिरनित्य अनिर्वचनीय प्रेम-समूहको इस जगतमें प्रकट करते हुए अपने निकट मेरी निरन्तर रक्षा करें ॥७॥

हे प्रभो ! आप श्रीयमुनाके तीरपर सूर्यताप निवारक बद्म्ब बृक्षके नीचे मणिमय भवनकी शोभा वर्द्धन करते हुए विराजमान हैं तथा ललिताके साथ श्रीमती राधिकाकं द्वारा निरन्तर सेवित हो रहे हैं । हे मदनगोपाल ! आप अपने निकट निरन्तर मेरी रक्षा करें ॥८॥ हे मदनगोपाल ! जो निष्कपट हृदयसे इस मधुर अष्टकका प्रतिदिन सायंकालमें पाठ करते हैं, उन्हें अपने चरणकमलोंके प्रेमरसके प्रवाह में निमिज्जित करते हुए हे मदनगोपाल ! आप अपने निकट मेरी निरन्तर रक्षा करें ॥९॥

## नव वर्ष

कहुणावरुणालय भगवान् श्रीचैतन्यदेव की प्रेरणा से श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित श्रीपत्रिकाने आज……वर्षमें पदार्पण किया है। यद्यपि आजकल अन्याभिलाषमयी भक्तिका प्रचार करनेवाली पत्रपत्रिकाओंकी भरमार है, किर मी शुद्धाभक्तिका प्रचार करनेवाली पत्रिकाओंका नितान्त अभाव ही है। क्योंकि तथाकथित भक्तिपत्रिकाओंकी भित्ति केवलाभक्तिके ऊपर आधारित नहीं है। अन्तरमें आवान्तर उद्देश्योंको भरपूर रख कर शुद्ध भक्तिका यथार्थ स्वरूप उपलब्ध नहीं किया जा सकता है। यदि भक्तिके नामपर अभक्तिपूर्ण क्रिया-कलाप ही पाठकोंके समझ उपस्थित किये जाय, तो पाठकोंपर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी नवोदित भक्तिवृत्ति क्रमशः हास पाने लगती है। हम विषय-वासनाओंसे युक्त किसी भी क्रिया-कलापको शुद्धाभक्ति माननेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं। ऐसी-ऐसी क्रियाओं और कथाओंसे शुद्धाभक्तिका प्रचार नहीं होता। अन्तरमें भक्तिविरोधी अभिलाषाएँ वर्तमान रहने पर विशुद्ध भक्तिके आविर्भावकी तनिक भी संभावना नहीं। जो लोग इन बातोंको समझ नहीं पाते अथवा इन्द्रिय-सुखोंमें मत्त होकर शुद्ध-भक्तिकी आवश्यकताकी उपलब्धि नहीं कर पाते, वे अन्यान्य गौण क्रिया-कलापोंको ही भक्ति मानकर उसका प्रचार किया करते हैं।

### श्रीपत्रिकाका उद्देश्य और धर्म

इमारे अद्वालु पाठकोंमेंसे अधिकांश ही इतर अभिलाषाओंसे रहित शुद्ध भक्त हैं। इसलिए उनको सर्वप्रकारसे कल्याण-मार्गमें अप्रसर कराती हुई यह श्रीपत्रिका उनको सन्तुष्ट करनेमें पूर्ण समर्थी हैं। जहाँ विषय-भोगोंका व्यापार है, वहाँ हिंसा-द्वेष आदि कुप्रवृत्तियोंका प्रादुर्भाव अनिवार्य है। किन्तु श्रीपत्रिका में निमंत्सर भागवतजनोंके आचरित और प्रचारित

शुद्ध भगवद्भक्तिकी ही एकमात्र चर्चा रहनेसे इसमें हिंसा द्वेष आदिका तनिक भी स्थान नहीं है। इसलिए अभक्त सम्प्रदायका इसमें स्थित न होना आश्चर्यकी बात नहीं। श्रीपत्रिका कपटीभक्तोंके अनित्य धर्मका अथवा कर्म और ज्ञान द्वारा आच्छादित धर्मका या इतर अभिलाषायुक्त भक्तिके प्रचारसे सर्वथा दूर रहती हैं।

**विषय-सेवा और कृष्ण-सेवा एक नहीं; विषय सेवा बन्धनका हेतु है।**

श्रीपत्रिकामें विषयोंकी कोई चर्चा नहीं रहती। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विषयी लोग इसे पढ़कर सन्तुष्ट होंगे अथवा वे विषयोंका परित्याग कर देंगे। कृष्णके अतिरिक्त दूसरे विषयोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो लोग कृष्णोत्तर अनित्य विषयों की सेवा और कृष्णकी सेवाको समान मानकर अपनेको धर्म निरपेक्ष अथवा असाम्प्रदायिक मानते हैं, वे भले ही अपनेको बड़ा भक्त समझें, विषयोंके महाजालमें ही अवस्थित होते हैं।

**श्रीकृष्णकी सेवाका फल—धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षकी प्राप्ति नहीं है।**

उद्देश्य या लक्ष्य ही—यथार्थ बस्तु है, जिनका उद्देश्य कृष्णकी सेवाको प्राप्त करना नहीं, विकिं अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको प्राप्त करता होता है, इस उनके भक्ति-गूम्य प्रयत्नोंका आदर नहीं कर पाते। कृष्णसेवाका फल—प्राकृत अर्थ भोग-विलास अथवा प्रतिष्ठाकी प्राप्ति नहीं है। इसे हम सन्तोंकी बाणियोंमें, उनकी रचनाओंमें तथा उनकी उपदेशावलियोंमें सर्वत्र ही देख पाते हैं। इतना होने पर भी यदि हम दिनरात विषयभोगों और क्षणिक इन्द्रिय सुखोंमें ही मत्त रहें और ऐसी भावना करें कि मेरा भगवद्-

भजन हो रहा है, तो हम वास्तवमें 'अन्ध' अर्थात् विषयी हैं। ऐसा विषयी होनेपर हम इस श्रीपत्रिकासे संतुष्ट नहीं हो सकते। हमारी अखिल चेष्टाएँ श्रीकृष्णके लिये नियुक्त होनेपर भी यदि हम उस सेवाके बदले अनित्य और आपात रमणीय विषय-भोगोंकी कामना करें, तो इसका अर्थ यह है कि हम अभी तक भक्तिका यथार्थ स्वरूप ही नहीं समझ सकें।

### जातिगत ब्राह्मण विषयी है—यदि वह वैष्णव नहीं है

बहुतोंकी धारणा है—ब्राह्मणता निर्मत्सर वैष्णवों के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुमें अवस्थित होती है—जिसे ब्राह्मण कहते हैं, और इस वैष्णवताको प्राप्त करनेके लिए ब्राह्मण वंशमें जन्म प्रहण करना आवश्यक है। किन्तु यह उनका निरा भ्रम है। शुद्ध भक्तिके उदय होते ही वैष्णवमें ब्राह्मणताका अपने आप ही प्रकाश हो पड़ता है, वह वैष्णव चाहे किसी भी कुल या जातिका क्यों न हो। वैष्णवमें ब्राह्मणता का अभाव होता है—ऐसा सोचनेवालोंके लिये वैष्णव होना अत्यन्त कठिन है। ऐसे लोगोंको 'वैष्णव प्राय' की संज्ञा दी गयी है।

'वैष्णव-प्राय' लोग विषयोंके भोगमें ही सुख मानते हैं। विषयका स्वभावही ऐसा होता है कि अपने संसर्गमें आनेवाले जीवोंको विषयी बनाकर वह उन्हें भगवद्-विमुख कर देता है। किन्तु भक्त-जनोंका स्वभाव इसके ठीक विपरीत होता है। वे सर्वदा कृष्णसेवामें ही मन रहते हैं। कृष्णसेवा ही इनका स्वरूप-धर्म है। इसलिये विषयोंके प्रति वे सर्वथा उदासीन रहते हैं। जिनमें विषयोंके प्रति प्रबल आसक्ति होती है, वे भक्तका बाना पहनकर भी वैष्णवमें जातिबुद्धि और वर्णबुद्धि रखते हैं तथा स्वार्थान्ध होकर वैष्णवोंको अपनेसे हीन मानते हैं। मत्सर ब्राह्मणोंसे शुद्ध वैष्णवोंको हीन समझनेसे अथवा उन्हें यथायोग्य सम्मान न देनेसे जीव विषयी हो पड़ता है।

### वैष्णवोंमें जाति-पाँतिका भेदभाव करना अपराध है

जो लोग भक्तिके सिद्धान्तोंसे पूर्णतया अनभिज्ञ होकर भी भक्त कहलानेके इच्छुक होते हैं, जो कृष्ण सेवामें निमग्न शुद्ध भक्तोंको भी अप्राकृत ब्राह्मण-धर्मसे रहित समझते हैं तथा जो वैष्णवोंकी जाति-पाँतिका विचार करते हैं, उनमें शुद्ध भक्तिका अभाव जानना चाहिए। जो भक्तिकी ओर अप्रसर होते हुए कृष्णोन्मुख भक्तजनोंको शौक और वर्णके विचार से अभद्र, शद्र और चारडालके नामसे पुकारनेमें कुंठित नहीं होते, ऐसे-ऐसे गुरुनामधारी कपटी व्यक्तिगण कृष्णभजनमें उन्मुख स्वभाववाले व्यक्तियों को उचित्कृष्ट भोजनकारी मानते हैं। ये लोग इतने अर्थ-लोलुप होते हैं कि ये उन्हीं व्यक्तियोंसे रुपये, पैसे, अज्ञ और वस्त्र आदि प्रदणकर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, किन्तु उनका छुबा हुआ जल नहीं प्रहण करते; क्योंकि उससे उनकी जाति अष्ट हो जानेका डर रहता है। गुरुगिरीका व्यवसाय करने वाले ऐसे व्यक्ति केवलमात्र बामिनी, कांचन और प्रतिष्ठाके लिए ही सीधे-सादे गवाँर लोगोंको ठगते हैं। वे केवलमात्र वचनोंसे ही अपने शिष्योंको कृष्णसेवा में नियुक्त करते हैं, वास्तविक व्यर्थोंमें नहीं। इस प्रकारके गुरु और शिष्य दोनोंकी ही अशेष दुर्गति होती है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने ऐसे कपटी व्यवसायियोंसे दूर रहनेके लिए बार-बार निषेध किया है।

आजकल परमार्थके विषयमें भी कपटताका काफी बोलबाला है। आज शुद्धा-भक्ति अभक्तस-माजकी कपटतापूर्ण भक्तिजालसे आच्छादित है। शौक ब्राह्मण गुरुके आसन पर बैठकर समाजके भय से नीच कुलमें उत्पन्न शुद्रोंको दीक्षा प्रदान करके भी उनको शुद्ध मानते हैं तथा उनके साथ सम्बन्ध स्थापन कर उनके हाथोंसे अज्ञ-जल प्रहण करके पतित हो रहे हैं। पतित पाचन श्रीगुरुदेवका उच्च आसन प्रहण कर पतितको उद्धार करना तो दूर रहे, स्वयं ही

पतित होनेके दूरसे वे अपने परमार्थ तक विसर्जन करनेके लिए तैयार खड़े हैं।

### दीक्षाका प्रभाव

पतितोंको पावन करनेके कारण ही गुहरेव पतित-पावन हैं। वैष्णवी दीक्षा प्राप्तकर भगवद्भक्तिमें प्रतिष्ठित व्यक्ति शूद्र नहीं रह सकता। वह शूद्र कुलमें उत्पन्न होने पर भी भगवद्भक्ति विहीन ब्राह्मणोंसे लाखोंगुना अधिक है। हमारे शब्दोंका निर्देश है—

किवा विष, किवा न्यासी, शूद्र केने नय ।  
येऽहं कृष्ण-तत्त्ववेच्छा—सेहु गुह इय ॥  
वस्य यहलक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णानिव्यञ्जकम् ।  
यदन्यत्रापि दश्येत तत्त्वेनैव विनिर्दिशेत् ॥

कारणानि द्विजत्वस्य दृक्षमेव तु कारणम् ।  
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः चक्रियतां ब्रजेत् ॥  
यथा काङ्क्षनतां याति कांस्यं रस-विधानतः ।  
तथा दीक्षा-विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥  
भक्तिरष्टविधा द्वेषा यस्मिन् स्वेच्छयि वर्तते ।  
स विप्रेन्द्रो मुनि श्रेष्ठः स ज्ञानी स च परिषदतः ॥  
चरणालोपि हिजश्रेष्ठः हरि भक्ति-परायणः ॥  
इतने पर भी जो लोग वैष्णवी दीक्षा प्राप्त वैष्णवोंको अब्राह्मण समझते हैं अथवा उनकी निन्दा करते हैं, उनकी भगवद्भक्तिका स्वरूप क्या है?—  
इसे पाठकवर्ग अच्छी तरहसे अनुभव कर सकता है।  
—ब्रगदगुह ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

## लौल्य

लौल्य शब्दका अर्थ है—चंचलता, लोभ अथवा बासना। चंचलता दो प्रकारकी होती है अर्थात् (१) चित्तकी चंचलता और (२) बुद्धिकी चंचलता। इन्द्रियानुगत मनोवृत्तिका नाम चित्त है। अन्तःकरण अर्थात् मन जिस विषयका चित्तन करता है, उसी विषयके संसर्गसे चित्तमें राग अथवा द्वेषकी उत्पत्ति होती है। चित्तकी चंचलता दो प्रकारकी होती है— (१) रागके अधीन चित्तकी चंचलता और (२) द्वेषके अधीन चित्तकी चंचलता। गीतामें कहते हैं—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधियते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुनर्विमिवाभसि ॥

( गीता २।६७ )

जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु दूर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह पक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको दूर लेती है।

भक्ति द्वारा चित्तकी चंचलताका दूर होना  
फिर कहते हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थं राग-द्वेषी स्यवस्थितौ ।  
तयोर्न वशमागच्छेतौ शास्य परिपन्थिनौ ॥

( गीता ० ३।३४ )

इन्द्रिय इन्द्रियोंके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष द्विपे हुए हैं। साधकको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये। वर्णोंकि वे दोनों ही उसके कल्याण-मार्गमें विघ्न ढालने वाले महान् शशु हैं। चित्तकी चंचलतारूप लौल्यको नियमित करनेके लिये महादेवी हरिभक्तिका आश्रय लेना चाहिये।

विषय-समूह चित्तकी चंचलताके हेतु हैं तथा चित्तकी चंचलता भक्तिके साधनमें प्रधान विधन है। इसलिये साधकको चाहिये कि वह समस्त विषयोंको भगवत्-सम्बन्धी करके विषयोंके प्रति होनेवाले रागको भगवत् रागके रूपमें बदल दें। ऐसा होनेसे चित्त भगवत् रागका आश्रयकर भगवद्भक्तिमें स्थिर हो जाता है। चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचा—इन पाँचोंको हानेन्द्रिय कहते हैं तथा वाणी, हाथ, दैर, गुदा और उपस्थि-इनको कर्मेन्द्रिय कहते हैं। इन दर्शों

इन्द्रियोंमें भगवद्भाव युक्त करनेसे चित्त भगवद्भक्ति में स्थिर हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, सर्प और शब्द—इनको इन्द्रियाथं या इन्द्रियोंका विषय कहा जाता है। इन विषयोंमें भगवद्भाव पैदा कर उन्हें भोग करनेसे भक्तिका ही अनुशीलन होता है। उन विषयोंके जो अंश भगवद्भक्तिके प्रतिकूल हों, उनके प्रति द्वेषको और जो अंश अनुकूल हों, उनके प्रति रागको ( अनुरागको ) नियुक्त करना चाहिये। किन्तु बात यह है कि जबतक बुद्धिकी चंचलता दूर नहीं होती, तबतक चित्तकी चंचलता कैसे दूर की जा सकती है? अतएव सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धिकी चंचलता दूर की जाय। बुद्धि स्थिर और शुद्ध होनेपर वह स्वयं राग-द्वेषको नियमित कर लेगी।

### बुद्धि

बुद्धि—मनकी उस वृत्तिको कहते हैं, जो सत्-असत्की विवेचना करती है। बुद्धि दो प्रकारकी होती है। व्यवसायात्मिका ( निश्चयात्मिका ) बुद्धि और बदूशाखाओंवाली ( अनिश्चयात्मिका ) बुद्धि। निश्चयात्मिका बुद्धि एक होती है। किन्तु अनिश्चयात्मिका बुद्धि बहुत भेदोंवाली और अनन्त प्रकारकी होती है। गीतामें इसे इस प्रकार समझाया गया है—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन !  
बदूशाखा इनन्तश्च बुद्धयोऽन्यवसायिनाम् ॥

( गीता २।४० )

बहुत शाखाओंवाली बुद्धिसे युक्त सकाम व्यक्ति नाना प्रकारके भोगोंकी कामनाएँ करता है। वह ऐहिक और पारत्रिक इन्द्रियसुखोंकी कल्पनामें इतना मर्हत हो जाता है कि उस समय वह अप्राकृत जगन् की सत्ता तकको अस्वीकार कर देता है। इसलिये—

भोगैश्वर्य-प्रसक्तानां तथापहृत चेतसाम् ।  
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

( गीता २।४४ )

उनकी बुद्धि न तो आत्म-तत्त्वमें स्थिर होती है

और न नियमित ही होती है। ऐसी बुद्धि समाधिके लिये अनुपयुक्त होती है। जिनकी बुद्धि परमात्मामें अटल स्थित हो जाती है वे ही 'स्थित प्रज्ञ' और 'स्थित धी' कहे जाते हैं।

**'स्थित प्रज्ञ'** और **'स्थित धी'** पुरुषका लक्षण

गीतामें 'स्थित प्रज्ञ' और 'स्थित धी' पुरुषका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थं मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोद्धयते ॥

दुःखेष्वबुद्धिमननाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीत-रागभयक्रोधः स्थितधीमुनिदध्यते ॥

( गीता २।४४-४५ )

हे अर्जुन ! जिस समय वह पुरुष आत्मासे आत्मामें ही सन्तुष्ट होकर मनमें स्थित सम्पूर्ण काम-नाओंको भलीभाँति त्याग देता है, वह समय वह "स्थित प्रज्ञ" कहा जाता है। और दुःखोंकी प्राप्तिसे जिसके मनमें उद्गेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसे व्यक्तिको 'स्थित धी' मुनि कहा जाता है।

इस 'उपदेशामृत' के प्रथम श्लोकमें जिन छः वेगोंको इमन करनेका उपदेश दिया गया है, उसकी प्रतिध्वनि हम गीताके उपरोक्त दो श्लोकोंमें पाते हैं।

अब यह जान लेना आवश्यक है कि बुद्धि दो प्रकारकी होती है—एक प्राकृत और दूसरी अप्राकृत। जो वृत्ति मनके अधीन रहकर सद्-असद्का विवेचन करती है, उसे प्राकृत बुद्धि कहते हैं तथा जो बृत्ति आत्माके अनुगत होकर सद्-असद्का विवेचन करती है, उसे अप्राकृत बुद्धि कहते हैं। कोई-कोई इन पृथक्-पृथक् दोनों बुद्धियोंको एक मानते हैं। किन्तु ऐसा समझना भल है।

इन्द्रियाणि परात्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिद्वद्येभ्यः परतस्तु सः ॥

( गीता ३।४२ )

जह विषयसे अर्थात् स्थूल शरीरसे इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं। इन इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है; क्योंकि मनकी प्रेरणा से ही इन्द्रियाँ कर्मोंमें प्रवृत्त होती हैं। मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है। बुद्धि आत्मगत वृत्ति है। अतएव वह मनकी नियन्ता अर्थात् प्रभु है। वही बुद्धि किसी जड़ीय अहंकारके अधीन होनेपर विकृत होकर प्राकृतत्व स्वीकार कर लेती है। जीवके कृष्णदासत्व रूप शुद्ध अहंकारके अधीन रहने पर बुद्धि सर्वदा स्वाभाविक रूपमें शुद्ध रहती है। इसलिये चेत्रज्ञ पुरुषको अनुत्तमें 'बोद्धा' कहा गया है। शुद्ध बुद्धि चित्तकण जीवकी एक वृत्ति मात्र है। इसलिए जीव बुद्धिसे श्रेष्ठ है।

### चिन्मय अहंकार और आत्मगत बुद्धिका पराक्रम

जो जीव अपनेको शुद्ध चित्तकण जान लेता है, उस समय—“मैं कृष्णका दास हूँ”—ऐसा चिन्मय अहंकार उसमें स्वाभाविक रूपमें उदित होता है। उस समय बुद्धि जीवके शुद्ध स्वरूपमें अपने शुद्ध रूपसे अवस्थित होकर अचित्-वस्तुका तिरस्कार कर चिद्-वस्तुका आदर करती है। तब जीवको कृष्णदास्यके अतिरिक्त कोई भी दूसरी कामना नहीं होती है। वह प्राकृत कामको अत्यन्त तुच्छ मानकर त्याग देता है। ऐसी अवस्थामें जीव, ‘स्थित प्रज्ञ’ और ‘स्थित धी’ कहलाता है। इस समय चिदूबलका सहारा पाकर बुद्धि स्वयं स्थिर हो जाती है तथा मन और चित्तको नियमित कर अपने अधीन कर लेती है। तब बुद्धि की आज्ञासे चित्त इन्द्रियोंको नियमित कर उन्हें अपने वस्तुमें कर लेता है तथा इन्द्रियोंके अर्थमें अर्थात् विषय-समूहमें कृष्णदास्यके अनुकूल भावको युक्त कर देता है। भक्ति मार्गमें इसीको “इन्द्रिय निप्रह” कहते हैं।

### इन्द्रिय निप्रहके उपाय

शुष्क ज्ञान और शुष्क वैराग्यके मार्गोंसे इन्द्रियोंका निप्रह सुन्दर रूपसे नहीं होता। गीतामें कहते हैं—

विषया निनिवत्संते निराहारस्य देहिनः ।  
रसवज्ज्ञे रसोऽप्यस्य परं इष्ट्वा निवत्ते ॥  
( गीता ३।४६ )

इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको प्रहण न करनेवाले पुरुषोंके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं। परन्तु उनमें रहनेवाली विषय-वासना निवृत्त नहीं होती। किन्तु विषय-रस ( विषय-वासना ) से श्रेष्ठ कृष्णदास्यरूप चिदूरस जब विषय-रसमें मिला दिया जावा है तब वह चिदूरस विषय-वासनारूप छुद रस को सम्पूर्ण रूपसे दूर कर देता है। इसीको यथार्थ इन्द्रिय-निप्रह कहते हैं अर्थात् इन्द्रियोंको चित्तके अधीन करना और चित्तको नियमित कर बुद्धिके अधीन रखना ही इन्द्रिय-निप्रह है। इस प्रक्रियासे बुद्धि और चित्तको अचलतारूपी लौक्य दूर हो जाता है।

बुद्धिको कर्मयोग, ज्ञानयोग और दान  
आदिसे हटा कर भक्तियोगमें ही  
स्थिर करना कर्त्तव्य है

बुद्धि चंचल होनेसे मन स्थिर नहीं हो पाता। वह कभी कर्ममार्गकी ओर दौड़ता है, तो कभी योग-मार्ग और ज्ञान-मार्गकी ओर। श्रीमद्भागवतमें एक मात्र भगवद्भक्तिको ही बुद्धि स्थिर करनेका उपाय बतलाया है—

यत् कर्ममियंतपसा ज्ञान-वैराग्यतत्त्वं यत् ।  
योगेन दान धर्मेण भ्रोयोभिरितरैरपि ॥  
सर्वं मद्भक्तिये गेन मद्भक्तो ज्ञमतेऽज्ञसा ।  
स्वर्गाविवर्गं नदाम कष्ठञ्चिद् यदि वांछुति ॥  
न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता षाकान्मितनो मम् ।  
वांछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥  
( श्रीमद्भा० १।२०।३२-३४ )

कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य योगाभ्यास, दान धर्म और दूसरे कल्याण-साधनोंसे जो कुछ स्वर्ग, अपवर्ग, मेरा परमधाम अथवा कोई भी वस्तु प्राप्त होती है, वह सब मेरा भक्त मेरे भक्तियोगके प्रभाव

ही से यदि चाहे तो अनायास प्राप्त कर लेता है। मेरे अनन्य प्रेमी एवं धैर्यवान् साधु भक्त स्वयं तो कुछ चाहते ही नहीं, यदि मैं उन्हें देना चाहता हूँ और देता भी हूँ, तो भी दूसरी वस्तुओं की तो बात ही क्या, वे कैवल्य मोक्ष भी नहीं लेना चाहते। उन्हें मेरी सेवाका सुख ही स्वाभाविकरूपमें अच्छा लगता है।

इन सब बातों पर इष्टि रखकर साधक भक्तको चंचलता रूपी लौल्यको दूर कर बुद्धिको भक्तिमें स्थिर करना चाहिए।

### लौल्यका दूसरा अर्थ—लोभ

'लौल्य' शब्दका दूसरा अर्थ है—लोभ। यदि लोभको अन्य विषयोंमें नियुक्त किया जाय, तो वह कृष्णके चरणकमलोंके प्रति कैसे लग सकता है? इसलिए लोभको यत्नपूर्वक श्रीकृष्णके चरणोंके प्रति लगाना ही हमारा परम कर्तव्य है। विषय-भोगोंके प्रति लगा हुआ लोभ कर्म-योग अथवा ज्ञान-मार्गकी क्रियाओं द्वारा उतना शुद्ध नहीं हो पाता, जितना वह कृष्णसेवाके द्वारा शुद्ध होता है।

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहरो मुहुः ।

मुकुन्दसेवया यद्वत्प्रादास्मा न शाम्यति ॥

( श्रीमद्भा० १६।३६ )

काम और लोभकी चोटसे बार-बार घायल हुआ साधकका चित्त श्रीकृष्णसेवामें जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि आदि योग-मार्गोंसे वैसी शान्तिका अनुभव नहीं करता। कृष्णसेवा द्वारा चित्त अनायास और अविलम्ब ही स्थिर हो जाता है, क्योंकि बुद्धिका भगवानमें लग जाना ही काम है—

"शमो मञ्चिष्ठता दुर्देः"

( श्रीमद्भा० ११।१६।३६ )

कृष्ण सेवा, वैष्णव सेवा और श्रीभगवन्नामके प्रति लोभ पैदा होनेपर इतर विषयोंके प्रति लोभ नहीं रह सकता। कृष्णके प्रति ब्रजवासियोंकी सेवाका

भाव देख कर जिस भाग्यवानके हृदयमें उस सेवाके प्रति लोभ पैदा होता है, वे उस दुर्लभ लोभकी कृशसे रागानुगा भक्तिमें अधिकार प्राप्त करते हैं। जिस परिमाणमें रागात्मिका सेवाके प्रति लोभ होता है, उसी परिमाणमें साधकका इतर लोभ दूर हो जाता है। स्वादिष्ट भोजन, पान, शयन तथा धूम और मदिरा पानमें लोभ रहनेसे भक्ति संकुचित हो जाती है। मदिरा-पान और कनक-कामिनीका लोभ भक्तिका नितान्त विरोधी होता है। जिनको शुद्ध भक्तिके प्रति लोभकी इच्छा है, वे इन उक्त भक्तिविरोधी लोभोंका परित्याग करेंगे। विषय—पापमय हो अथवा वह पुण्यमय हो, इनका लोभ अतिशय मन्द होता है। कैवल कृष्ण सम्बन्धी लोभ ही कल्याणका हेतु होता है। मन्त महात्माओंका भगवत्कथा के प्रति कैसा लोभ होता है, इसका श्रीमद्भागवतमें सुन्दर चित्रण किया गया है—

वयं तु न वित्प्याम उत्तमः श्लोकविक्रमे ।

पच्छात्त्वतां रसाज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥

( श्रीमद्भा० १।१।१३ )

हे सत! पुण्यकीर्ति भगवान्की लीला-कथाओं-को सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं होती; क्योंकि रसज्ञ ओनाओंको पद-पद पर भगवान्की लीला-कथाओंमें नये-नये रसका अनुभव होता है। कृष्णके विषयमें इस लोभका नाम आदर है। इसका विस्तृत विवेचन पीछे किया जायगा।

### लौल्यका तीसरा अर्थ—वासना

लौल्यका तीसरा अर्थ है—वासना। वासना दो प्रकारकी होती है—भोग वासना और मोक्ष वासना। इन दोनों वासनाओंका पूर्णस्वप्नसे त्याग किये बिना भक्तिका साधन नहीं होता। श्रीरूपगोस्वामीने भक्तिरसामृत-सिन्धु में लिखा है—

मूकिमूकिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते ।

वद भक्तिसुखस्यात्र कथमध्युदयो भवेत् ॥

( भक्तिरसामृतसिन्धु १।१।१५ )

मुक्ति अर्थात् भोगकी कामना और मुक्तिकी

सृष्टा—ये दो पिशाचियाँ हैं। ये दोनों पिशाचियाँ साधकके हृदयमें जब तक वास करती हैं, तब तक उसके हृदयमें भक्तिका मुख कैसे उत्पन्न हो सकता है?

### भोगकी वासना

भोगकी वासना दो प्रकारकी होती है। एक ऐहिक और दूसरी पारत्रिक। खो-पुत्र, धन-ऐश्वर्य, राज्य, विजय, स्वादिष्ट भोजन, शयन, खी-सम्भोग, सम्मान आदि लौकिक विषयोंके भोगको ऐहिक भोग कहते हैं। स्वर्ग-गमन, वहाँ असृतगमन, देवतुल्य सुखोंके भोग आदिको पारत्रिक भोग कहते हैं। हृदयमें जब तक इन दोनों प्रकारके भोगोंकी कामनाएँ बत्तमान रहती हैं, तब तक साधक निःस्वर्थ रूपमें कृष्णका भजन नहीं कर सकता। अतः भोगकी कामनाओंको हृदयसे सम्पूर्ण रूपसे उखाड़ फेंकना चाहिये। ऐसा न होनेसे भक्तिके साधनमें विघ्न होता है।

### युक्त-वैराग्य

इसमें ध्यान देनेकी बात यह है कि उपरोक्त समस्त विषय-भोग यदि भक्तिके अनुकूल हों, तभी गृहस्थ-व्यक्ति उन्हें निष्पाप रूपमें प्रदण कर सकते हैं। ऐसी अवस्थामें इन भोगोंको भोग नहीं कहा जा सकता है; बल्कि उन्हें 'साधकका जीवनोपाय' कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

धर्मस्य द्यापवर्यस्य नार्थोऽर्थोपकल्पते ।  
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो ज्ञानाय हि स्मृतः ॥  
कामस्य नेन्द्रियं प्रीतिलिंगं जीवेत् यावता ।  
जीवस्य तत्त्वं जिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥

( श्रीमद्भा० ११२१-१० )

भोग-साधक धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है। अर्थ-से काम अर्थात् भोग-विज्ञासकी प्राप्ति होती है। भोग-विज्ञासका फल इस लोक और स्वर्गमें इन्द्रियों-की तृप्ति करना है। किन्तु अपवर्ग रूप धर्मसे जो अर्थ प्राप्त होता है और उस अर्थसे जिस कामकी प्राप्ति होती है, वे अर्थ और काम तत्त्व-जिज्ञासाके सर्वथा अनुकूल होते हैं, क्योंकि धर्म और अर्थका फल—भोग-

विज्ञास नहीं, प्रत्युत् उसका प्रयोजन—कृष्णकी कामना की पूर्ति करना है और इन कृष्ण सम्बन्धी कामनाओं का नाम ही—तत्त्व-जिज्ञासा है, जिसे "युक्त वैराग्य" भी कहते हैं।

### मोक्षकी वासना

साधकके लिये मोक्षकी वासनाका परित्याग करना भी अत्यन्त अनिवार्य है। मोक्ष पाँच प्रकारका होता है—सालोक्य, सार्थि ( समान ऐश्वर्य ) सामीप्य, ( निकट वास करना ), सारूप्य ( एकसा रूप ) और सायुज्य। भक्तजन सायुज्य मुक्तिको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। सालोक्य, सार्थि, सामीप्य और सारूप्य—ये भोग-वासनासे शून्य होनेपर भी बांछनीय नहीं हैं। जीवात्मा भक्तिके बलसे जड़ विषयोंसे मुक्त होनेके साथ-ही-साथ मुक्ति प्राप्त करता है। मुक्ति—भक्तिका गौण फल है। कृष्ण प्रेमकी प्राप्ति ही साधन भक्तिका मुख्य फल है। यहाँ पर सार्वभौम भट्टाचार्यके वचनोंको उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता—

"सालोक्यादि" चारि यदि हय सेवाद्वारा ।  
तवु कदाचित् भक्त करै अङ्गीकार ॥  
"सायुज्य" सुनिते भक्तेर हय शृणा भय ।  
नरक बांछये, तवु सायुज्य ना लय ॥  
ब्रह्मे हैश्वरे सायुज्य दुई त प्रकार ।  
ब्रह्म-सायुज्य हइते हैश्वर-सायुज्य धिक्कार ॥  
( श्रीचैतन्यचरितामृत )

सारांश यह कि भगवान्की इच्छासे साधकोंका जो जड़ीय सम्बन्ध दूर होता है, भक्त उसे अनायास ही प्राप्त कर लेता है। इसलिये मुक्तिके लिये अलग कामनाके द्वारा भक्तिके साधनको दूषित करना उचित नहीं है।

इसलिये वहिमुख लौल्यको विशेष साधानीके साथ परित्याग करना भक्तिके साधकोंका एकान्त कर्त्तव्य है।

—ॐ विष्णुपाद् श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ढाकुर

# गीताकी वाणी

## ग्यारहवाँ अध्याय

दसवें अध्यायमें भगवान् कृष्णके मुखसे उनकी विभूतियोंका विस्तृत वर्णन सुनकर अर्जुन वडे विस्मित हुए और उनके हृदयमें भगवान्के इस महान् तथा सम्पूर्ण विभूतियोंसे युक्त स्वरूपको प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी बड़ी लालसा उत्पन्न हुई। उन्होंने भगवान्से उस रूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना की। परम अद्वालु और प्रेमी भक्तकी प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल भगवान् ने उसके सामने अपना विराट विश्वरूप प्रकट किया। उन्होंने प्रकृतिके अन्तर्यामी उस सद्घ-शिर्षी महाविष्णुका रूप दिखलाया, जो स्वरूप कृष्णकी एक कला-स्वरूप हैं, तथा जिसके एक अंशमें समस्त विश्व स्थित है। इस विश्वरूपका दर्शन करानेसे पहले भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको यह चतुलाया कि जो आँखें भगवान्के अतीव माधुर्यपूर्ण श्री-कृष्णरूपका निरन्तर दर्शन करती है उन आँखोंसे ऐश्वर्यपूर्ण विश्वरूपका दर्शन पाना असम्भव है। इसलिये भगवान् ने अर्जुनको उस गौरवपूर्ण अति विचित्र विश्वरूपका दर्शन करनेके उपयुक्त दिन्य-हष्ठि प्रदान की थी। भगवान् ने अर्जुनको दिव्य नेत्र तो दिये, किन्तु वैसा मन नहीं दिया जिससे अर्जुन उस रूपकी मनोहरताका आस्वादन कर सकते। अर्जुन भगवान्के प्रधान पार्षद और नरके अवतार माने जाते हैं, इसलिये उनके नेत्र कदापि प्राकृत नहीं हो सकते। तथापि जो आँखें नरलीलाका अभिनय करने वाले श्रीकृष्णके चरणकमलोंके सीम्बर्यका निरन्तर पान करती हैं उन्हें विश्वरूपका दर्शन रुचिकर नहीं होता। हो भी तो कैसे, मिश्रीका निरन्तर आस्वादन करनेवाली रसनाको मैता गुइ क्या कभी अच्छा लग सकता है?

अर्जुनने भगवान्के असंख्य मुख और असंख्य नेत्रोंसे युक्त अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले दिव्य भूषणों से युक्त, दिव्य माला और वस्तुओंको धारण किये हुए अतिशय भयंकर, सीमारहित, हजार सूर्योंके एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न प्रकाशसे भी अधिक ल्यो-तिर्मय विराट रूपका दर्शन किया। तदनन्तर आश्चर्यमें चकित और पुलकित होकर अद्वा-भक्ति सदित मिरसे प्रणाम कर वे विश्वरूप परमात्मासे बोले—“देव! मैं आपके विराट शरीरके समस्त देवोंको, स्थावर और जङ्गम समस्त प्रकारके प्राणियोंके समुदायको, सृष्टिकर्ता ब्रह्माको, महादेवको, समस्त ऋषियोंको तथा अनेक भुजा, मुख, पेट और नेत्रोंसे युक्त देवता को अनन्त रूपमें दर्शन कर रहा हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके न तो आदिको देखता हूँ; न मध्यको और न अन्त को ही। मैं आपको मुकुट गदा और चक्रसे युक्त तथा सब ओरसे प्रकाशमान तेजके पुज्ज, प्रज्ञवलित अग्नि और सूर्यके सदृश बीमिशाली, कठिनतासे देखे जाने योग्य और सब ओर से अप्रमेय स्वरूप देख रहा हूँ। आप ही अचर ब्रह्म हैं, आप ही इस जगतके परम आश्रय हैं, आप ही सनातन धर्मके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। आप आदि, अन्त और मध्यसे रहित, अनन्त सामर्थ्यवान्, अनन्त भुजावाले, चन्द्र-सूर्य नेत्रोंवाले और प्रज्ञवलित अग्निरूप मुखवाले हैं। आपके तेजसे समस्त विश्व संतप्त हो रहा है, स्वर्ग, पृथ्वी और उनके बीचका सम्पूर्ण बायुमयहल तथा समस्त दिशायें आपके तेजसे परिपूर्ण हो रही हैं। हे महात्मन्! आपके इस भयंकर और अलौकिक रूपको देखकर तीनों लोक अतिशय भयभीत हो रहे हैं।

देवताओंके समूह आपमें प्रवेश कर रहे हैं, कुछ भयभीत होकर आपकी स्तुति कर रहे हैं, महर्षिजन उत्तमोत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी बन्दना कर रहे हैं, रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, साध्यगण, विश्वदेव, अश्विनीकुमार, मरुदगण, पितरोंके समुदाय तथा गन्धर्व, यज्ञ, राज्ञस और मिद्रोंके समुदाय सभी बड़े विस्मित होकर आपका दर्शन कर रहे हैं। हे महावाहो ! आपके अनेक मुख और अनेक नेत्रोंबाले, अनेक हाथ और पैरों बाले तथा अनेक उदर और दाँतोंबाले इस विकराल रूपको देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ। आकाशको स्पर्श करनेवाले अनेक वर्णोंसे युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त आपको देखकर मैं अधीर और अशान्त हो रहा हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हों। समस्त कौरवी सेनाके साथ दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और द्रोणाचार्य तथा हमारे पक्षके भी प्रधान-प्रधान योद्धाओंके सहित सबके सब आपके विकराल मुखोंमें बड़े बेगसे दीदते हुए प्रवेश कर रहे हैं, और कई एक चूर्ण हुए सिरोंके सहित आपके दाँतोंके बीच लगे हुए दीख रहे हैं। जैसे नदियाँ अवश होकर दीदती हुई समुद्रमें प्रवेश करती हैं, वैसे ही नरलोकके समस्त बीर भी आपके मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं। उन सम्पूर्ण लोकोंको प्रज्ञविलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुए आप अपने शोणितसे सिवत होठोंको चाट रहे हैं। आपकी अ ज्योतिसे सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण होकर अत्यन्त संतप्त हो रहा है। हे उपरूपवाले ! आपको नमस्कार है। मैं आपको विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ।"

इस प्रकार अर्जुनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् ने अपने उपरूप धारण करनेका कारण बतलाते हुए कहा— "मैं लोकोंका नाश करनेवाला महाकाल हूँ। इस समय लोगोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हुआ हूँ। तुम पंच-पाण्डवोंके अतिरिक्त इस कुरुक्षेत्रके युद्धमें कोई भी जीवित न बचेगा। मैं तुम्हरे शत्रुघ्नके समस्त शूरवीरोंको पहले से ही मार रखा हूँ, तू

केवल निमित्त मात्र बन जा और इन्हें विनाश कर धन और यशको प्राप्त कर।"

भगवान्के बचनोंको सुनकर अर्जुनने भयसे काँपते हुए हाथ जोड़कर गद्-गद वाणीसे कहा— ऋषिकेश ! आपके नाम, रूप, गुण और प्रभावके कीर्तनसे जगत् अतिशय आनन्दित हो रहा है और आपके प्रति अनुरक्त हो रहा है, राज्ञसगण भयसे इधर-उधर भाग रहे हैं तथा सिद्धगण नमस्कार कर रहे हैं। नमस्कार क्यों नहीं करें— आप ही तो देवताओंके देवता हैं, जगत् के आश्रय हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्माके भी परम गुरु और आदि कारण हैं तथा व्यक्त और अव्यक्त समस्त चराचर जगत् आपका प्रकाश मात्र है। आप ही आदि देव, पुराण, पुरुष और जगत्के परम आश्रय स्वरूप हैं, बायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और ब्रह्माके भी पिता हैं। मैं आपको पुनः २ नमस्कार करता हूँ। हे अच्युत ! आपके प्रभाव को न जानते हुए आपको सखा और बन्धु आदि मानकर प्रमादवश मैंने 'हे कृष्ण !' 'हे यादव !' 'हे सखे !' इसप्रकार जो कुछ विनासोंचे समझे कहा है अथवा आसन और भोजन आदि में मैंने परिहास आदि द्वारा आपका जो अपमान किया है उसके लिए मैं आपसे ज्ञान करने की प्रार्थना करता हूँ।"

तदनन्तर अर्जुन भगवान्के पहले कभी न देखे-हुए अद्भुत विश्वरूपका दर्शन कर बड़े विस्मित और हर्षित हुए तथा साथ ही साथ भयसे व्याकुल होकर भगवान्से उनके नित्य दर्शनीय रूपको दिखलानेके लिए उन्होंने प्रार्थना की।

भगवान् ने अर्जुनकी इस प्रकार प्रार्थना सुनकर कहा— "अर्जुन ! मैंने अपने आत्मयोगके प्रभावसे तुम्हें जिस विश्वरूपका दर्शन कराया है उसे तुमसे पहले किसीने कभी नहीं देखा है। मेरे इस रूपका दर्शन वेद पाठ, यज्ञ, दान, अध्ययन अथवा कठोर तपस्या के द्वारा भी नहीं किया जा सकता है। तुम मेरे इस विश्वरूपको देखकर ढरो मत। अब तुम मेरे नित्यरूपका दर्शन करो।"

ऐसा कहकर भगवान् ने अर्जुनको पहले चतुर्भुज रूप और अन्तमें अपने परम सौम्य नराकृति श्याम-सुन्दर रूपका दर्शन कराया। इस परम मनोहर और नित्यरूपका दर्शन कर अर्जुनके भय मोह और भय दूर हो गये। वे अपनी पूर्ववत् स्थितिमें आगये।

भगवान् ने अर्जुनको स्थिर और पूर्ववत् स्वरूप देखकर कहा—‘मेरे इस श्यामसुन्दर रूपका दर्शन अतिशय दुर्लभ है। देवता भी इस रूपके दर्शनकी नित्य अभिलाषा करते हैं, किन्तु वे इसका दर्शन नहीं कर पाते। जिस रूपको तुम प्रतिदिन देखते हो, उसे बेद, पाठ, तपस्या दान और यज्ञ आदि के द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। उसे तो केवल मेरी अनन्या भक्तिके द्वाराही देखा अथवा जाना जा सकता है या साक्षात्कार किया जा सकता है।’

यहाँ पर किसी-किसी टीकाकारोंका कहना है कि “सुदुर्दर्शमिदं रूपं” श्लोक विश्वरूपके लिए आया है। किन्तु विचार और युक्तियोंके सामने यह मत चपयुक्त नहीं प्रतीत होता, क्योंकि विश्वरूपके सम्बन्ध में तो पहले ही। “न वेदयज्ञाध्ययनैर्दानैः (११।४८) श्लोक आ चुका है। अब यहाँ तो भगवान् यह दिखला रहे हैं कि विश्वरूप मुझ कृष्णके नराकृत चतुर्भुज रूप के ही अधीन है और वे अपने आत्म योगके प्रभावसे उसे दिखलानेमें समर्थ हैं। यदि कृष्णरूप विश्वरूपके अधीन होता तो कृष्णके लिए विश्वरूपका दर्शन कराना कभी भी सम्भव नहीं होता।

भागवत्-संदर्भके रचयिता श्रीजीवगोस्वामीने इस प्रसंगमें लिखा है कि कोई-कोई विश्वरूपको ही सर्वश्रेष्ठ स्वरूप मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। इसका कारण यह है कि ‘असदृव्यपदेशात्’—(वेदान्त सूत्र २।१।१७) आदि सूत्रोंके अनुसार उपसंहारके वाक्यमें ही उपक्रम वाक्यका अर्थ निरुपण किया जाता है तथा उपक्रम और उपसंहारमें “मन्मना” आदि श्लोकोंके बक्ता अर्जुनके सखाके स्वप्नमें विराजमान नराकृत परमब्रह्म श्रीकृष्ण ही परम स्वरूप हैं। विश्वरूप इसी परम स्वरूप श्रीकृष्ण रूपके

अधीन है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्णने इच्छा मात्र से ही इस स्वरूपको दिखाया दिया था। यदि श्रीकृष्ण-स्वरूप विश्वरूपके अधीन होता, तो ऐसा होना असंभव था। वे इच्छा करनेपर भी उसे हठात् दिखला नहीं पाते। विशेषतः गीताके इसी अध्यायमें ऐसा कहा गया है कि “अर्जुनसे ऐसा कहकर भगवान् ने पुनः अपना निजरूप दिखलाया।” इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि नराकृत चतुर्भुज रूपही भगवानका निजरूप है, विश्वरूप उनका साक्षात् स्वकीय रूप नहीं। यही कारण है कि भक्त अर्जुनको विश्वरूप अभीष्ट नहीं है, यद्यपि उन्हें तो भगवान्का स्वकीय रूपही अभीष्ट है। विश्वरूपका दर्शन कर अर्जुन कहते हैं—“मैंने आपके इम विकराल रूपको पहले कभी नहीं देखा था। अतः इसे देखकर मुझे बड़ा ही विस्मय हो रहा है तथा शरीर भयसे काँप रहा है।”—इन शब्दोंसे विश्वरूपके दर्शनमें अर्जुनकी हचि नहीं प्रकट होती है।

विश्वरूपका दर्शन करनेके लिए भगवान् ने अर्जुन को दिव्य हष्टि दी थी। इसलिए किसी-किसी का कहना है कि विश्वरूपही सर्वश्रेष्ठ रूप है। किन्तु उनका यह कथन सम्पूर्ण निराधार है। श्रीकृष्णका नराकृत रूप ही प्राकृत हष्टिमें अगोचर होता है और भगवान् की किसी विशेष शक्तिसे युक्त हष्टि ही उस रूपको देखनेमें समर्थ होती है।

ब्रह्म-वस्तु हमारी प्राकृत हिन्दियोंके पकड़में परे होती है। इसलिए हमारी आँखें उस जड़ावीत श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं कर सकती। इससे सुस्पष्ट है कि परतम तत्त्व श्रीकृष्णको अपने सखाके रूपमें नित्य दर्शन करनेवाली अर्जुनकी हष्टि निश्चय ही अप्राकृत है। तब विश्वरूपका दर्शन करनेके समय भगवानने उन्हें दिव्य हष्टि दी थी, इसका तात्पर्य यह है कि नराकृत ब्रह्मके दर्शनोपयोगी अर्जुनकी स्वाभाविक हष्टि और दिव्य हष्टि दो भिन्न-भिन्न हष्टियाँ हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनकी स्वाभाविक हष्टिको आच्छादित फरके उन्हें दिव्य हष्टि प्रदान की थी। इसलिए वहाँ दिव्य हष्टि प्रदान करनेकी बात कही

गई है। किन्तु श्रीकृष्णकी भक्तियोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दिव्य दृष्टिसे युक्त जीव परब्रह्मके श्रेष्ठ स्वरूप 'नररूप' का दर्शन करनेमें समर्थ नहीं है। जैसे भगवान् कहते हैं—“तुम जिस रूपका दर्शन कर रहे हो, इसका दर्शन अतीव दुर्लभ है। देवगण भी इस रूपका दर्शन करनेकी सर्वदा अभिज्ञापा करते हैं।” वे किर कहते हैं कि नराकृत परब्रह्मका दर्शन एकमात्र भक्तिके द्वारा ही सम्भव है।

किसी-किसीको सन्देह हो सकता है कि “सुदुर्शमिदं रूपं” श्लोक विश्वरूपके लिए ही आया है। किन्तु उनका ऐसा सन्देह ठीक नहीं; क्योंकि उक्त श्लोकके ठीक पिछले श्लोकमें ही अजुन कहते हैं—“हे सौम्य ! हे जनार्दन ! अब तुम्हारे इस नररूपका दर्शन करके मैं स्थिर चित्त और पहलेकी तरह स्थानाविक स्वस्थ्य हो गया हूँ। अजुनकी इस उक्तिसे विश्वरूप दर्शनका प्रसंग ‘सुदुर्शमिदं’ प्रसंगसे पूर्वक

जान पड़ता है। इसलिए नराकृत परब्रह्मके सम्बन्धमें ही उक्त ‘सुदुर्शमिदं’ श्लोककी अवतारणा है। इसमें संदेहकी कोई बात नहीं है।

ऐसे नराकृत परब्रह्म स्वरूपकी प्राप्तिका उपाय क्या है ? उत्तर है—भगवान्‌के लिए ही सम्पूर्ण कर्मोंको करना अर्थात् भगवत् मंदिर मार्जन करना, भगवान्‌के लिए पुष्प चयन करना, पुष्प वाटिका और तुलसीकाननका निर्माण करना, भगवान्‌की पूजा करना, भगवान्‌की लीला कथाओंवाले शास्त्रोंका अध्ययन करना, भगवत् प्राप्तिको परम पुरुषार्थ मान कर अवगति कीर्तनादि नवधा भक्तिका आचरण करना, भक्ति विमुख लोगोंका संग परित्याग करना तथा समस्त प्राणियोंके प्रति वैर भावसे रहित होना इत्यादि ही उसकी प्राप्तिके उपाय हैं।

—क्रिदियिदस्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

## शरणागति

रक्षकके रूपमें वरण—आत्मनिवेदनात्मक ( मानसिक )  
( श्री विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर )

हे करुणानिधि ! मैंने उत्तम कर्म एक भी नहीं किया ।  
ज्ञान न सुक्ष्मको हुआ, तुम्हारे चरणों में मन नहीं दिया ॥  
अपने ही को ठगा सदा मैं, जड़ सुख में मतवाला बन ।  
चारों ओर अँधेरा लख, आया मैं तब चरण शरण ॥  
आत्म समर्पण किया तुम्हारे श्रीचरणोंमें अब स्वामी ।  
सुक्ष्म पर करिये कृपा, जानकर भक्तिमार्गका अनुगामी ॥  
प्रभो ! प्रतिज्ञा यही तुम्हारी, जो कोई शरणागत है ।  
उसे प्रमाद कभी न सतावे, यही शास्त्र का भी मत है ॥  
सुक्ष्म पापी की और न गति है, तब प्रसाद मैं माँग रहा ।  
और मनोरथ सारे तजकर एक मनोरथ यही गहा ॥  
कब मैं हूँगा नाथ ! आपका, नित्य सेव्य हो तुम स्वामी ।  
भक्तिविनोद नित्य है सेवक, भाव मन तब अनुगामी ॥

# अचिन्त्यभेदाभेद

## प्रथम सिद्धान्त

### मङ्गलाचरण \*

बंदेऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपद-कमङ्कं श्रीगुरुन् वैष्णवांशच  
 श्रीरूपं साग्रजातं सहगण-रघुनाथान्वितं तं सजीवम् ।  
 साहैतं सावधूतं परिवत-सहितं कृष्णचैतन्य-देवं  
 श्रीराधाकृष्ण-पादान् सहगण-लक्षिता-श्रीविश्वामीन्वितांशच ॥ ( क )

( श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्थ २१ )

नमः श्री विष्णुपादाय कृष्ण-प्रेषाय नृत्ये । श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने ॥  
 श्रीवार्षभानवी-देवी दयिताय कृष्णाऽवये । कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञान-दायिने प्रभवे नमः ॥  
 माधुर्योऽवल-प्रेमाल्प श्रीरूपानुग-भक्तिः । श्रीगौर-करणा शक्ति विग्रहाय नमोऽस्तुते ॥  
 नमस्ते गौर-वाणी-श्रीमूर्त्ये दीन-तारिये । कृष्णानुग-विरुद्धापसिद्धान्त-ध्वान्त-हारिये ॥ ( ख )  
 ( श्रीसागवत-पत्रिका वर्ष १, संख्या १ )

\* परमहंस स्वामी श्रीश्रीभक्तिप्रज्ञान केशव महाराज “अचिन्त्यभेदाभेद” नामक प्रस्तुत प्रम्थके रचियता हैं। उन्होंने मङ्गलाचरणके कुछ श्लोकोंमें ही प्रम्थके प्रतिपाद्य विषयको गागरमें सागर भरनेका श्लाघनीय एवं सफल प्रयत्न किया है। मङ्गलाचरणके उपसंदारके कतिपय श्लोक प्रम्थकारके स्वरचित हैं, जिनमें अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्वका अति प्राञ्जल और चमत्कार पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साथ-ही-साथ प्रम्थकारने यह भी प्रमाणित किया है कि श्रीमन्महाप्रभुके अनुगतजन श्रीवृष्ण-माध्व-गौडीय-वैष्णव-सम्प्रदायके ही अन्तभूत हैं। इनका स्वतन्त्र रूपमें कोई अलग सम्प्रदाय नहीं है। —प्रकाशक

( क ) श्रीमन्त्र दीक्षागुरु और भजन शिक्षागुरुके चरणकमलोंकी, श्रीमद् आनन्दतीर्थ ( मध्वाचार्य )-श्रीमाधवेन्द्रपुरी आदि परमपरात्पर गुरुवर्ग, चारों युगोंमें प्रकटित भागवतजन एवं श्रीरूप, श्रीरूपके ज्येष्ठभाता श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूपके अनुगत श्रीरघुनाथदास गोस्वामी तथा श्रीरूपके परम कृष्णापात्र श्रीजीव गोस्वामी, श्रीअद्वैताचार्य, अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु और पार्षदोंके सहित श्रीकृष्ण-चैतन्य-महाप्रभुके एवं सखी-मञ्जरीगण और ललिता विशाखाके सहित श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ। ( जगद्-गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कृत अनुभाष्यके अवलम्बन पर आनंदित )

( ख ) कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञानके दाता, कृष्णप्रेष्ट श्रीराधारानीके अतिशय प्रिय इस भूतलपर अव-तीर्ण डॅ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी नामक कृष्णावारिध प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ जो माधुर्यके द्वारा अतिशय उज्ज्वल प्रेम-पूर्ण रूपानुग भक्तिको दान करनेवाले तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी करणाशक्तिके विग्रह- स्वरूप हैं, उन श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो

नमो भक्तिविनोदाय सचिच्चदानन्द-नामिने ।

गौर-शक्ति-स्वरूपाय रूपानुगवराय ते ॥ ( ग )

( श्रीभगवत्-पत्रिका प्रथम वर्ष, प्रथम संख्या )

नाभावाक्ष विचारणैक-निपुणौ सद्गमं-संस्थापकौ, भूया-दीन-गणेशकौ कहण्या कौपीन-कन्धाभितौ ।  
आनन्दान्तुष्ठि बदू नैक-निपुणौ कैवल्य-निस्तारकौ, बन्दे रूप-सनातनौ रघुवुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥ ( घ )

( श्रीष्टद्गोस्वाम्यष्टकम् )

जयो नवद्वीप-नव-प्रदीपः, स्वभाव-पाषण्ड-रजौरमिहः ।

स्वनाम-शिर्षा-जप सूत्रधारी, चैतन्यचन्द्रो भगवान् मुरारिः ॥ ( ङ )

( जैक महाजन कृत )

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदेष्ट कोटि- कोटिष्ठशेष-वसुधादि-विभूति-भिन्नम् ।

तद् ब्रह्म-निष्ठकलमनन्तमशेष-सूत गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ ( च )

( स्वयं श्री ब्रह्माकृत ब्रह्मसंहिता ४ । ४० )

जन्मायस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिजः स्वाट् ते ते ब्रह्म-हृदा य आदि क्वये मुद्धान्ति यत् सूरयः ।  
तेजो-वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र श्री-सर्गोऽमृता धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ ( छ )

( स्वयं श्रीब्रह्मास-कृत-भागवत ११११ )

गौरवाणीके श्रीमूर्ति स्वरूप हैं, दीन जनोंकी रक्षा करने वाले हैं तथा श्रीरूपानुग विचार-धाराके ( ब्रह्म-मात्व-गौडीय-बैष्णवोंके अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तके ) विरुद्ध कु-सिद्धान्तरूप अन्धकारका विनाश करनेवाले हैं, उन जगदगुरु श्रीसरस्वती प्रभुपादको नमस्कार करता हूँ ।

( ग ) जो रूपानुग भगवद् भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके शक्ति-स्वरूप हैं, उन सचिच्चदा-नन्द श्रीभक्तिविनोद ठाकुरको नमस्कार है ।

( घ ) जो नाना प्रकारके शास्त्रोंके विवेचनमें अतिशय निपुण हैं, जो सद्गमको स्थापन करने वाले हैं, जो कृपा परब्रह्म हो कर दीन-हीन जनोंकी रक्षाके लिए कौपीन और कन्धा धारण करनेवाले हैं, जो आनन्दरूपी समुद्रको वर्द्धन करनेमें अतिशय निपुण हैं, तथा जो कैवल्य मुक्तिसे ( जीवोंकी ) रक्षा करने-वाले हैं, उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीवगोप्यामीको मैं प्रणाम करता हूँ ।

( ङ ) जो नवद्वीपके नये प्रदीप स्वरूप हैं, जो स्वभावसे ही पाषण्डोंका दलन करनेमें सिंह स्वरूप हैं, जो सोलह नामोंवाले तारकब्रह्मनामको विना संख्या रक्खते हुए भी जोर-जोरसे कीर्तन करनेकी शिर्षा देने वाले हैं, जो उक्त महामन्त्रको संख्यापूर्वक जप करनेके लिए सूत्रको ( सूतमें गाँठ देकर मालाके रूपमें ) धारण करनेवाले हैं, उन श्रीचैतन्यचन्द्र नामक भगवान् मुरारीकी जय हो ।

( च ) कोटि कोटि ब्रह्मारण्डोंके भीतर बसुधा आदि विभुतियोंसे पृथक निष्ठक अशेष और अनन्त तत्त्वके रूपमें प्रतिभात होनेवाले ब्रह्म जिसकी प्रभा ( अङ्गकी ज्योति ) हैं, उन आदि पुरुष गोविन्द—श्रीकृष्ण-भगवान्का मैं भजन करता हूँ । ( श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर कृत असृतप्रवाह भाष्य )

( छ ) जिस परमेश्वरसे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय क्रमशः अन्वय और व्यतिरेक रूपमें होते हैं, जो परमेश्वर जगत् कर्तृत्वके सम्बन्धमें सर्वप्रकारसे ज्ञाताहैं, जिनमें स्वतः सिद्ध ज्ञान स्वयं नित्यरूप में विराजमान है, जिन्होंने आदि कवि ब्रह्माके हृदयमें अपने संकल्पमात्रसे ही तत्त्व-वस्तुका प्रकाश किया है,

देवकी-नन्दन नन्द-कुमार वृन्दावनात्मन गोकुल-चन्द्र ।  
कन्द-फलाशन सुन्दर-रूप नन्दित-गोकुल वन्दित-पाद ॥ (ज)  
( श्रील मध्याचार्यकृत-द्वादशस्तोत्र ६।५ )

अस्य लक्ष्मेति संज्ञां वचिदिपि निगमे याति चिन्मात्रसत्ता-  
प्यंशो यस्योशकैः स्वैर्विभवति वशयनेव मायां पुमांश्च ।  
एकं यस्यैव रूपं विलासति परमध्योऽनि नारायणार्थं  
स श्रीकृष्णो विघ्नां स्वयमिह भगवान् प्रेम तत्पादभाजाम् ॥ (क)  
( श्रीख जीवगोस्वामि-कृत-सत्त्वसन्दर्भे ८ )

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा  
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांश-विभवः ।  
घडैश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान् स स्वयमयं  
न चैतन्यात् कृष्णाऽन्नगति परतत्त्वं परमिह ॥ (ज)  
( श्रीकृष्णदास-कविराज कृत—चै. च. अ. १।३ )

सत्यानन्ताचिन्त्य-शक्तस्यैक-पदे, सर्वाध्युमे भक्त-रक्षाति-ददे ।  
श्रीगोविन्दे विश्व-सगारिदि-कन्दे, पूर्णानन्दे नित्यमात्मां मतिमै ॥ (ट)  
( श्रील वलदेव-कृत—गीताभूषा-भाष्य १।१ )

जिस परमेश्वरके सम्बन्धमें इन्द्र आदि देवतागण भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्यकी रश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिस परमेश्वरमें सत, रज और तम गुणोंकी स्थिति सत्यवत् प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें जिसमें जड़ीय धर्म असम्भव है तथा जिसमें कपटताका सर्वथा अभाव होता है, उन सत्य-स्वरूप लक्षणमय परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं ।

—श्रील मरम्यती ठाकुर-कृत-अनुवादसे अनुदित ।

(ज) हे देवकी नामवाली यशोदाके पुत्र, नन्द महाराजके कुमार, वृन्दावनमें विहार करने गाले, कन्द और फल आदिका भोजन करनेवाले, मनोहर रूपबाले, गोकुलवासियोंको आनन्द प्रदान करनेवाले तथा सबके प्रणाम्य मैं आपकी बन्दना करता हूँ ।

(क) जिनकी चिन्मात्र सत्ताको वेदोंमें कहीं-कहीं ब्रह्म कहा गया है, जिनके अंश पुरुषके रूपमें माया को वशीभूतकर अपने अंशसे वैभव-विलास प्रकाश किया करते हैं और जिनके 'नारायण' नामक रूप परव्योम ( वैकुण्ठ ) में विलास करते हैं, वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इस जगत्‌में उनके चरणकम्लोंका भजन करनेवालोंको अपना प्रेम प्रदान करें ।

—श्री नित्यानन्द गोस्वामीके १३१८ वंगाब्दमें प्रकाशित तत्त्व संदर्भसे ।

(ब) उपनिषदोंमें जिसे अद्वैत ब्रह्म कहा गया है, वे मेरे प्रभुकी अंग कान्ति हैं । योगशास्त्रोंमें जिसे अन्तर्यामी पुरुष अथवा परमात्मा कहा गया है, वे मेरे प्रभुके अंश-स्वरूप हैं । जिनको ब्रह्म और परमात्माका आश्रय और अंशी-स्वरूप षड्-पेशवर्यपूर्ण भगवान् कहा जाता है, वे मेरे प्रभु स्वयं भगवान् हैं । अतएव श्रीकृष्ण चैतन्यसे श्रेष्ठ और कोई भी परतत्त्व नहीं है ।

—श्री भक्तिविनोद-कृत श्री चै. च० अमृतप्रबाह भाष्य ।

(ट) एकमात्र सत्य, अचिन्त्य शक्तिमान्, सबके अध्यक्ष, भक्तोंकी रक्षा करनेमें सबसे अधिक दक्ष, स्वर्ग आदि विश्व-ब्रह्माण्डके मूल, पूर्णानन्द-स्वरूप श्रीगोविन्द देवके प्रति मेरी मति सर्वदा लगी रहे ।

चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वं भेदाभेदमचिन्त्यकम् ।  
 शक्ति-शक्तिमतोरैवयं युगपद्वच्चते सदा ॥  
 तत्त्वमेकं परं विद्याल्लीलया तद्विद्या स्थितम् ।  
 गौरः कृष्णः स्वयं द्वे तदुभावुभयमाप्नुतः ॥  
 सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकमेवाद्वितीयकम् ।  
 सर्वनित्य-गुणैर्गौरः कृष्णो रसस्तु निर्गुणैः ॥  
 श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म तथवद्वा तु निर्गुणं हि तत् ।  
 उपासते गृष्णा विज्ञाः यथा तुषावधातिनः ॥  
 श्रीविनोद-विहारी यो राधया मिलितो यदा ।  
 सदाहं वन्दनं कृर्यात् सरस्वती प्रसादतः ॥ (३)

( अन्यकार-कृत श्री राम कृ० विं० वि० तत्त्वाष्टकम् ३, ४, ५, ७, ८ )

‘अनन्त’-‘सुन्दरानन्द’-‘हरि’-गुरु-विरोधिनाम् ।

देख्यानां दलनं वन्दे गौरवाणी-विनोदकम् ॥ (३)

( अन्यकार-कृत )

(३) शक्ति और शक्तिमानका ऐक्य-स्वरूप चिल्लीलामिथुन-तत्त्व नित्यकाल अचिन्त्यभेदाभेद रूपमें युगपत् वर्तमान रहता है, अर्थात् परतत्त्व वस्तु कभी भी निःशक्तिक नहीं है। उस तत्त्वमें शक्ति और शक्तिमान एक ही रूपमें नित्य विराजमान रहते हैं। वे पूर्ण चेतनमय लीला-पुरुषोत्तम स्वयं मिथुन विप्रह हैं, अर्थात् ऋषि-पुरुष (शक्ति-शक्तिमान) के सम्मिलित विप्रह हैं। वही मिथुन-विप्रह श्रीराधाकृष्ण अथवा गौर-तत्त्व हैं। उनमें भेद और अभेदरूप विहृद्ध धर्म उनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे युगपत् नित्य वर्तमान होता है। परतत्त्व एक है, परन्तु वह एक होनेपर भी लीलाद्वारा गौर और कृष्ण पृथक-पृथक् दो रूपोंमें अवस्थित है। वे दोनों ही स्वयं परतत्त्व वस्तु हैं तथा वे उभय रूप उभयताको प्राप्त होते हैं, अर्थात् श्रीगौर सुन्दर श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण होते हैं तथा श्यामसुन्दर कृष्ण गौरसुन्दर होते हैं। सगुण और निर्गुणतत्त्व एक और अद्वितीय हैं। समस्त गुणोंकी समष्टि ही गौरसुन्दर है तथा निर्गुणमें अर्थात् सर्वप्रकार गुणहीनतामें कृष्ण रसस्वरूप हैं अर्थात् परतत्त्व वस्तु स्वयं रसस्वरूप है; रस निर्गुण और अप्राकृत तत्त्व है, प्राकृत नहीं। श्रीकृष्ण अथवा गौर मिथुन-ब्रह्म हैं। उनको ( उनका भजन ) परित्यागकर मिथ्या ज्ञानीजन ( अज्ञानी ) भूसा कूटनेवालोंकी तरह निर्गुण ब्रह्मकी उपासना व्यर्थ ही करते हैं। अथवा भूसा कूटनेवाले चावल पानेकी आशासे जिसप्रकार व्यर्थ ही परिश्रम करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीजन भी कृष्णसेवा परित्यागकर निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाद्वारा केवल अम-ही-अम प्राप्त करते हैं अर्थात् उससे यथार्थ मुक्ति कभी प्राप्त नहीं करते। जब विनोद विहारी कृष्ण श्रीमती राधिकाके साथ मिलित होते हैं, तब श्रील सरस्वतीके प्रसादसे ( प्रथकर्त्ताके गुरुकी कृपासे ) मैं उनकी बन्दना करता हूँ।

(४) अनन्त, सुन्दरानन्द-श्रीहरिगुरुके विरोधी असुरोंके दलन, स्वरूप श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके विनोदक श्रीमद्भागवत और तदनुगत शास्त्रोंकी बन्दना करता हूँ। अथवा अनन्तवासुदेव, अचिन्त्य भेदाभेदवाद आदि प्रथोंके लेखक सुन्दरानन्द और नवद्वीप हरिवोल कुटीरके हरिदास वायाजी प्रभृति मेरे गुरुदेव के विरोधी असुरोंका दलनकरनेवाले श्रीगौरकिशोर, वाणी अर्थात् श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर और श्रीभक्ति विनोद ठाकुर की मैं बन्दना करता हूँ।

अचिन्त्यभेदभेद सिद्धान्तके उपास्य-विग्रह, नित्य, मनातन, पंचतत्त्वात्मक, अद्यज्ञानरूप श्रीहरिगुरु वैष्णवके चरणकमलोंका गुणानुकीर्तन करते हुए उनकी बन्दना और कृपा प्रार्थना करके आज मैंने इस प्रबन्धको लिखना आरम्भ किया है। एक अत्यन्त पतित और सर्व प्रकारसे अयोग्य होनेपर भी हरिगुरु वैष्णवोंके प्रति किये जानेवाले विरोधको सहनेमें असहिष्णु होनेके कारण ही मेरी यह शुद्ध सेवाकी चेष्टा है। वैष्णवोंका स्नेहाशीर्वाद और उत्साह ही मेरे इस छुट्र प्रन्थका पक्षमात्र अवलम्बन है।

### ग्रन्थकी प्रेरणा

अत्यन्त दुखके साथ कहना पड़ता है कि कुछ दिन पहले “अचिन्त्यभेदभेदवाद” नामक एक ग्रन्थको पढ़कर हम अत्यन्त मर्माद्दत हुए हैं। इस प्रन्थके लेखक हैं—श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद। लेखक एक ही उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ही और भी दो प्रन्थ लिखे हैं। इन दोनों प्रन्थोंके नाम हैं—‘गौडीय दर्शनेर इतिहास’ और ‘गौडीयार तीन ठाकुर’। ‘गौडीयदर्शन’ लगभग पाँचसौ पृष्ठोंमें तथा ‘गौडीयार तीन ठाकुर’ कुछ अधिक ६०० पृष्ठोंमें है। ‘अचिन्त्यभेदभेदवाद’ में भी परिशिष्ट आदिको मिलाकर लगभग ५०० पृष्ठ हैं। ये तीनों पुस्तकें भिन्न-भिन्न नामोंसे परिचित होनेपर भी मूलतः एक ही पुस्तक है। इन पुस्तकोंमें कुछ-कुछ

\* पाठकोंको जानकारीके लिए उक्त प्रबन्धका हिन्दी अनुशासनीय दिया जा रहा है—

“अनन्तवासुदेव और सुन्दरानन्द श्रीलप्रभुपादको शिष्याओंको स्पर्श तक नहीं कर सके। वे श्रीलप्रभुपादके निकट रहकर भी उनसे इतनी दूर थे, जिसकी सीमा निर्देश नहीं की जा सकती। श्रीमन्महाप्रभुके निकट रहकर भी जिस प्रकार काला कृष्णदासकी दुर्गति हुई थी, उससे भी कहीं बढ़कर अस्यन्त हीन घृणित और पापमय इनकी गति लाल्य करता हूँ। गुरुद्वारितासे बढ़कर मनुष्यकी और क्या अधोगति हो सकती है? श्रीगुरुदेवके निकट वास करनेसे ही गुरुका सेवक नहीं हुआ जाता। श्रील प्रभुपादने उक्त दोनों असुरोंके जीवन चरित्रसे हमें यहीं आदर्श शिक्षा दिया है।

सुन्दरानन्दने “गौडीयार तीन ठाकुर” “अचिन्त्यभेदभेदवाद” और “गौडीय दर्शनेर इतिहास” नामक तीन पुस्तकें लिखकर लगत्का बहुत ही अहित किया है। इन तीनों पुस्तकों द्वारा श्रीमन्महाप्रभु और श्रीरूपगोस्वामीके वचःस्थलमें शूल विद्व किया गया है। ये तीनों पुस्तकें तीन शूल अर्थात् त्रिशूल हैं। इनके द्वारा विशुद्ध गौडीय वैष्णव-विचारधाराकी हत्या करने चेष्टा की गई है। हरिगुरुवैष्णवकी हत्याके विषाक्त बीजसे ही उक्त त्रिशूलको सूष्ठि हुई है।

परिवर्त्तन देखे जानेपर भी वह उल्लेख योग्य नहीं। मूलतः इन तीनों प्रन्थोंका उद्देश्य और विषय एक ही हैं। इसलिए प्रस्तुत प्रबन्धमें हम अचिन्त्यभेदभेदवाद पुस्तकी ही समालोचना कर रहे हैं; क्योंकि इस पुस्तककी समालोचना होनेसे ही अन्य दो पुस्तकोंकी पृथक् रूपमें समालोचनाकी आवश्यकता न होगी।

यद्यपि किसी-किसी ज्ञेयमें लेखककी लेखन-प्रणाली और विभिन्न स्थानोंसे इतिहास संप्रहकी ज्ञेय प्रश्नामनीय है, तथापि अचिन्त्यभेदभेदवाद पुस्तककी समालोचनाका तात्पर्य है—इसका प्रतिवाद। पिछले वर्ष ( २१ दिन १९५६ शुक्रवारको ) विश्व-विळयात जगद्गुरु डॉविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरखती ठाकुरकी तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्में श्रीउद्धारण गौडीय मठ चिनसुरामें श्रीगौडीय वेदान्त समितिके विशेष अधिवेशनमें मैंने अपने भाषणमें सबके सामने उक्त तीनों प्रन्थोंका थोड़ा बहुत प्रतिवाद किया था। इस पुस्तकमें सुन्दरानन्द विद्याविनोद महाशयने यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि श्रीमद्भागवत अद्यज्ञादी प्रन्थ है तथा कैवल्य ही इसका एकमात्र प्रयोजन है। अतः अचिन्त्यभेदभेद श्रीमद्भागवतका मत नहीं है। उक्त प्रतिवादमूलक भाषण श्रीगौडीय पत्रिका ( बंगला मासिक ) वर्ष ८, संख्या १२, पृष्ठ ४६२ से ४७० में ‘श्रील शाचार्यदेवेर वक्तुता’ शीर्षकमें\* त्रिदिव्यस्वामी श्रीमद्भक्ति

वेदान्त वामन महाराजने प्रकाशित किया है। उक्त प्रबन्धके पृष्ठ ४६५ और ४६६ विशेषरूपसे पठनीय हैं। मेरे कुछ सत्यानुसंधिःसु उत्साही वन्धुजन उक्त भाषणको पढ़कर वडे आनन्दित हुए और उन्होंने मुझे उक्त प्रन्थांका विस्तृत प्रतिवाद करनेके लिए उत्साहित किया। तथा यथार्थ अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्व क्या है—

इसे प्रकाश करनेका बहुत ही अनुरोध किया। उनकी तथा अन्य भक्तोंकी इच्छापूर्तिके लिए गौड़ीय

दर्शनका यथार्थ दार्शनिक तत्त्व प्रकाश करने के लिए तथा हसे अपनी शुक्ष-सेवाका आदर्श मानकर मैं यह प्रबन्ध लिखनेमें प्रवृत्त हो रहा हूँ। आशा करता हूँ, सुधी पाठकवृन्द धीर चित्तसे इसका पाठ करेंगे और अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्वके सम्बन्धमें यथार्थ तथ्यकी उपलब्धि कर सकेंगे।

—ॐ विष्णुपाद सर्व श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गौस्वामी महाराज

हम क्रमशः इन तीनों पुस्तकोंकी समालोचना करेंगे। उन्होंने महामन्त्र नामक एक और भी अति पाषाणडतापूर्ण पुस्तिका लिखी है। उस पुस्तिका द्वारा उन्होंने हरिनाम महामन्त्रका कीर्तन करनेका निषेध किया है। हमने सोच्या, हम कलियुग के ऐसे-ऐसे दैत्य-दानवोंकी बातों पर ध्यान न देंगे, किन्तु आज प्रभुपादकी विरह-तिथि ( अप्रकट तिथि ) के अवसर पर ये बातें स्वतः ही स्मरण-पथ पर उदित हो रही हैं कि प्रभुपादके अभावमें दैत्य-दानवोंका उत्पात इस जगतमें किस प्रकार बढ़ रहा है।

कलियुगमें उद्धार का एकमात्र पथ है—उच्च स्वरसे महामन्त्रका कीर्तन करना। वासुदेव और सुन्दरानन्द—दोनों ही कीर्तनके विरोधी हैं, परन्तु सोलह नाम बच्चीस अहरोंवाला हरिनाम महामन्त्र सब समय और सबप्रकार से, संख्यापूर्वक अथवा असंख्यापूर्वक, जोर-जोरसे कीर्तनीय हैं। यही रूपानुग भक्ति-विनोद-धारा है और यही श्रीज प्रभुपादकी शिक्षा है। उक्त दोनों असुरोंने भिजकर जिस विशूलका निर्माण किया है उसके द्वारा वे यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि “श्रीमद्भागवत—एक शहूयवादी ग्रन्थ है और कैवल्य ही उसका एकमात्र प्रयोजन है। अचिन्त्य भेदाभेदवाद श्रीमद्भागवतका मत नहीं है। ‘यज्ञानमद्वयम्’—इस वाक्यसे अचिन्त्यभेदाभेदका बोध नहीं होता। ‘कैवल्यैक प्रयोजनम्’—इस वाक्यसे कैवल्यमात्र कृष्ण-प्रेम ही प्रयोजन नहीं है, बल्कि एकमात्र कैवल्यही प्रयोजन है, ऐसा प्रमाणित होता है।” हम लोग श्रीमन्महाप्रभुके अनुसार श्रीमद्भागवतको अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाशक ग्रन्थ मानते हैं एवं कृष्ण-प्रेमको ही एकमात्र प्रयोजन स्वीकार करते हैं। उक्त दोनों दानवोंने—भण्ड-तपस्वियोंने परमसुक आचार्य-कुलसुकृदमणि, कृपाके समुद्र श्रीबलदेव विद्याभूषण महोदयके श्रीचरणोंमें अपराध करके ही ऐसी दानवताका वरण किया है। प्राकृत सहजिया लोगोंकी तरह इनका भी अधः पतन ग्रत्यज ही दिखलाई पड़ रहा है। श्रीबलदेव विद्याभूषण गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायके एकमात्र रक्षक हैं। उनके चरणोंमें अपराध करनेवाले पाषाणिङ्गोंका स्मरण भी हमारे सर्वनाशका कारण होगा।

—श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष ८, संख्या १२, पृष्ठ ४६५ ४६६ से अनुदित

**बद्रीनारायणकी परिक्रमाका आयोजन चल रहा है**  
**--: यात्रीगण अनुसन्धान करें :--**

## चार्वाकमतका जन्म-रहस्य

एक समय देवता और दानवोंमें घोर संप्राप्त हुआ। दैत्यगण बुरी तरहसे पराजित होकर भागे और अपने गुरु शुक्राचार्य के निकट जाकर उन्होंने रोते-रोते अपने पराजयकी चात कही। शुक्राचार्यने उन्हें धैर्य देकर लौटा दिया और स्वयं उनकी रक्षाके लिए महादेवकी आराधनामें संलग्न हुए। उनकी कठिन तपस्यासे आशुतोष महादेव प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हुए और उनसे वर माँगने के लिए कहा। शुक्राचार्यने वर माँगते हुए महादेवसे कहा—“देव ! मैं देवताओंकी पराजय और असुरोंकी विजयकी अभिलाषा रखता हूँ। आप मुझे एक ऐसा मन्त्र प्रदान करें, जो देवगुरु वृहस्पतिके पास न हो, तथा जिससे मेरी अभिलाषा सहज ही पूर्ण हो ।”

महादेवजीने कहा—“वत्स ! वर कठिन है। किर भी यदि तुम एक हजार वर्ष तक कणधूम पीकर सिरके बल खड़े होकर तपस्या करो, तब मैं तुम्हें ऐसा मंत्र प्रदान कर सकता हूँ।” ऐसा कहकर महादेव अन्तर्द्धनि हो गये।

महादेवकी आज्ञानुसार भृगुपुत्र शुक्राचार्य कठिन तपश्चर्यमें प्रवृत्त हुए। इधर देवताओंने वृहस्पतिको अपना सेनापति बनाकर असुरोंपर बड़े जोरोंसे धावा चोला दिया। शुक्राचार्यकी अनुपस्थितिमें असुरोंकी पराजय अवश्यम्भावी थी—इसे असुरगण अच्छी तरह जानते थे। इसलिए वे बड़े चिन्तित हुए। कोई उपाय न देख कर अन्तमें वे गुरुपत्नी काव्यमाताकी शरण में आये। काव्य माताने असुरों की रक्षाके लिए आकर्मणकारी समस्त देवताओंको अपनी मायाके प्रभावसे निद्रित कर दिया। इधर देवताओंकी ऐसी अवस्था देखकर भगवान् विष्णुको बड़ी दया आयी। वे देवराज इन्द्रके निकट गये और माया-निद्रासे जगाकर उनसे कहा—‘देवराज !

तुम मेरे शरीरके अन्दर प्रवेश कर जाओ, ऐसा करोनेसे तुम्हारा कल्याण होगा।’ इन्द्र भगवानके शरीरमें प्रवेश कर गये। इसे देख कर काव्य माताको बड़ा ही क्रोध हुआ। उसने इन्द्रके साथ-साथ भगवान् विष्णुको भी जलाकर खाक कर डालनेके लिए अपनी तपस्याका प्रभाव प्रकट किया। उसकी तपस्या के प्रभावको देखकर इन्द्र बहुत ही डर गये। उन्होंने उस मायाचीको मार डालनेके लिए भगवान्ने प्रार्थना की। इन्द्रकी प्रार्थनासे भगवान् ने चक्रसुदर्शनसे उसका मस्तक काट कर अलग कर दिया, किन्तु महपि भृगुने अपनी मृत-पत्नीका सिर उसके धड़से लगाकर मंत्र बलसे उसे पुनर्जीवित कर दिया। काव्यमाताको इसप्रकार पुनः जीवित होते देख कर इन्द्र बड़े विस्मित और भयभीत हुए। उन्होंने अपनी कन्या जयन्तीको बुलाकर कहा—‘बेटी ! हम लोगोंका विनाश करनेके लिए दैत्यगुरु शुक्राचार्य आजकल महादेवकी कठिन तपस्या कर रहे हैं। तुम उनके पास जाओ और अपनी सेवाओंसे संतुष्ट कर उन्हें मोहित करो। मैंने तुम्हें शुक्राचार्यको दान कर दिया।’

पिताकी आज्ञा मानकर जयन्ती शुक्राचार्यके निकट पहुँची। वे उस समय कणधूमका पान करते हुए सिरके बल खड़े होकर कठिन तपस्यामें संलग्न थे। जयन्ती बड़े प्रेमसे उनकी सेवा करने लगी। इस प्रकार एक हजार वर्ष पूरा होनेपर शुक्राचार्यकी तपस्या पूरी हुई। भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें देवताओंको पराजित करनेकी शक्ति तथा दूसरोंके द्वारा मारेन जानेका वरदान दिया। महादेवके अन्तर्द्धनि होने पर शुक्राचार्यने इन्द्रकी कन्या जयन्ती की अभिलाषानुसार लोगोंकी आँखोंसे अदृश्य होकर उसके साथ एकसी वर्ष तक भोग-विलास किया। इसी बीच देवराज इन्द्र अपने गुरु वृहस्पतिके

पास पहुँचे। उन्होंने उनसे शुक्राचार्यके अन्तर्द्वारा होकर भोग-विलासमें मत्त रहने की बात बताकर उनसे दैत्योंको अपने वशमें करनेके लिए अनुरोध किया।

बृहस्पति हन्द्रकी इच्छानुसार दैत्योंको मोहित करने के लिए शुक्राचार्यका रूप धारण कर दैत्योंके दलमें पहुँचे और एक सौ वर्ष तक उनका पौरोहित्य किया। शुक्राचार्य इस समय जयन्तीके साथ भोग विलासमें मत्त थे। एक सौ वर्षके बाद वे घर लौटे। इन्हें देखकर असुर-समुदायके विस्मयका ठिकाना न रहा। उन्होंने एक शुक्राचार्यको अपने सभामण्डपमें बैठे हुए देखा और दूसरे शुक्राचार्यको सभामण्डपसे बाहर खड़े हुए देखा। वे बड़े सोचमें पड़े। आखिर बात क्या है? इन दोनों शुक्राचार्योंमें यथार्थ शुक्राचार्य कौन है? और इस समय हमारा कत्तृव्य क्या है?

शुक्राचार्यने योगबलसे समझ लिया कि मेरा रूप धारण करनेवाला यह व्यक्ति बृहस्पति है तथा यह देवताओंका कार्य करनेके लिए असुरोंकी बुद्धि मोहित कर रहा है। वे बृहस्पतिसे बोले—“देवगुरो! तुम यहाँ क्यों आये हो? ये लोग यह नहीं जानते हैं कि तुम बृहस्पति हो। तथा मेरा रूप धारणकर इन लोगों को मोहित कर रहे हो। तुम्हें ऐसा काम शोभा नहीं देता। तुम्हें याद होगा—तुम्हारे पुत्र कचने सज्जीवनी विद्याकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये अपना परिचय छिपाकर मेरा शिष्यत्व प्रहण किया था, किन्तु जब इसका भेद सुला तो असुरोंने उसे तुरन्त मार डाला था। इसलिये तुम्हारा ऐसा कार्य तुम्हारे लिए ही अहितकर है।”

शुक्राचार्यकी बात सुनकर बृहस्पति हँसने लगे। उन्हें इस प्रकार हँसते हुए देखकर शुक्राचार्यने दैत्यों से कहा—“असुरगण! इस संसारमें परद्रव्यका अपहरण करनेवाले अनेक चोर हैं; किन्तु तुम्हारे सामने बैठे हुए इस व्यक्तिके समान कोई चोर विरला ही मिलेगा। तुम लोगोंकी बुद्धि मारी गई है। मेरी

अनुपस्थितिमें तुम लोगोंने दूसरे व्यक्तिको अपना पुरोहित क्यों बनाया? मैं तुम्हारे कल्याणके ही निमित्त महादेवकी अराधना करनेके लिए गया हुआ था। तपस्या पूर्ण होनेपर उनका वर प्राप्तकर मैं सफल मनोरथ होकर अभी लौट रहा हूँ। किन्तु यहाँ अपने आसन पर अपने ही रूपमें बृहस्पतिको बैठा हुआ देख रहा हूँ। इसने छलसे तुम लोगोंको मोहित कर रखा है। इसीलिए तुम लोग कुछ भी समझ नहीं पा रहे हो। तुम लोग जल्दीसे इसे बोधलो और समुद्रमें केक दो।” शुक्राचार्य की बात सुनकर बृहस्पति बड़े ही गम्भीर शब्दोंमें दैत्यराजसे बोले—राजन! शुक्राचार्य मैं ही हूँ—इसमें आप तिल भर भी संदेह न करें, और ये—देवता हैं अथवा दानव हैं या नर हैं—मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। जैसा भी हो ये श्रीमान्‌जी मेरा रूप धारणकर हमें ठगने और देवताओंका कोई विशेष कार्य करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। अतः हमें इनसे सावधान रहना चाहिए।”

ऐसा सुनकर समस्त दैत्यगण एक स्वरसे बोल उठे—“साधु! साधु! आपने बिलकुल ठीक कहा है। वहले हमारे जो पुरोहित थे, अब भी वही हमारे गुरु हैं। इस नये व्यक्तिसे हमारा कोई मतलब नहीं। ये जहाँसे पधारे हैं, वहीं लौट जायें।”

अब तो शुक्राचार्यके कोधका पारावार न रहा। उन्होंने दैत्योंको अभिशाप देते हुये कहा—“तुम लोगोंने मुझे परित्याग किया है। इसलिए शीघ्र ही तुम लोगोंका राज्य-पाट ध्वंस हो जायगा और वेर विपत्ति में पड़कर तुम लोग भी मृत्युको प्राप्त होगे।” ऐसा कह कर वे तपस्या करनेके लिये बनमें चले गये। बृहस्पतिकी बाधा दूर हो चुकी थी। वे कुछ दिनों तक और भी वहाँ रहकर दैत्योंका पौरोहित्य करत रहे।

एक दिन दैत्योंने बृहस्पतिसे पूछा—“गुरो! आप कृपाकर हम लोगोंको ऐसे ज्ञानका उपदेश कीजिये, जिससे हमलोग वही आसानीसे इस असार संसार

सागर से उत्तीर्ण होकर मोक्ष प्राप्त कर सकें। देवगुरु वृहस्पति ने उनकी ऐसी प्रार्थना सुनकर उत्तर दिया—“मेरी भी ऐसी ही इच्छा थी। अच्छी बात है; तुम लोग पवित्र और एकाप्रचिन्ता होकर मेरे निकट वैठ जाओ। मैं तुम्हें उस मोक्षदायक ज्ञानका उपदेश कर रहा हूँ। देखो, इस जगतमें ऋषि, साम और यजुरादि वेदोंको प्राणियोंके लिये अतिशय उप्रप्रद समझना। वेदके बनानेवाले भण्ड थे, धूत थे, और पूरे स्वार्थी थे। इन्हीं स्वार्थी व्यक्तियोंने ही यज्ञ और आद्व आदि द्वकोसलोंका जन्म दिया है। वैष्णव धर्म तथा शैव धर्म सभी हिंसासे परिपूर्ण हैं।” अतः वे कुछर्म हैं। अद्वैतारीश्वर रुद्र भूत-प्रेतोंसे घरे रहते हैं, हृष्टियों की माला पहनते हैं, सर्वदा अशुचि रहते हैं। भला ऐसे शिव किस प्रकार मोक्ष प्राप्तकर सकते हैं? इनका आदर्श प्रह्लणकर जीव कैसे मोक्ष प्राप्तकर सकते हैं? विष्णु तो सर्वदा हिंसा कार्यमें ही मग्न रहा करते हैं। फिर ये भी कैसे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं? ब्रह्माकी तो बात ही न पूछो, ये रजोगुणका आश्रय लेकर स्मृष्टि कार्यमें ही निरन्तर व्यस्त रहा करते हैं। अतः इनका भी मोक्ष असम्भव ही है। वैदिक कर्मोंका अनुमोदन करनेवाले देवविं और महर्षिगण प्रायः सभी माँसाहारी होनेके कारण क्रूर और पापी हैं। मश्यपान द्वारा देवतावृन्द और माँसाहारके कारण ब्राह्मणगण भी किस प्रकारसे स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं? वेदोंमें यज्ञ अथवा आद्व आदि कर्मोंका जैसा माहात्म्य वर्णन किया गया है, वह सम्पूर्ण असम्भव है। यदि पशुओंकी वक्षिसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, तब नरकमें कौन जायगा? यदि एक व्यक्ति के भोजन करनेसे ( आद्वमें ) दूसरे व्यक्तिकी लृपि होना सम्भव है, तब किसीके विदेशमें जानेपर घरपर उसका आद्व करनेमें वह व्यक्ति आद्वमें दिये गये भोजन और वस्त्रादि सामग्रियोंको क्यों नहीं पाता? आकाशमें विचरण करनेवाले ब्राह्मण भी माँस भक्षण करनेके कारण पृथ्वीपर पतित हो पड़ते हैं। मैथुनके द्वारा स्वर्गकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? चन्द्रमाने वृहस्पतिकी खीं तारका हरणकर उससे वृधका जन्म

दिया था। वृहस्पति उसे अपना ही पुत्र मानते हैं। इन्द्रने गौतमकी खीं अहिल्याका सतीत्व नष्ट किया था, अब तुम्हीं लोग बतलाओ—यह कैसा धर्म है? जहाँ इस प्रकारका धर्म प्रचलित हो, वहाँ परमार्थकी सम्भावना कहाँ?

गुहकी ऐसी पारमार्थिक-वाणियोंको सुनकर दैत्यों को बड़ा कौतूहल हुआ। वे वृहस्पतिके चरणोंमें गिरकर बोले—“गुरुदेव! हम लोग संसारसे सम्पूर्ण विरक्त होकर मोक्षकी अभिलाषा रखते हैं। आप कृपाकर इस भवकूपसे हमारा उद्धार करें। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें दीक्षा प्रदान करें और हमें यह बतलानेकी कृपा करें कि हम किस देवताका आश्रय लें? स्मरण, ध्यान, धारणा अथवा उपबास आदि किस उपायका हमें अवलम्बन करना चाहिये, जिससे हम इस संसार सागरसे पार हो सकें। हम लोग इस समय संसारमें कुदुम्बके भरण-पेपण आदि कार्योंसे सर्वथा विरक्त हो चुके हैं।

उनकी ऐसी अद्वाको लक्ष्यकर देवगुरु वडे चिन्तित हुए। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि इन अद्वालु व्यक्तियोंको श्रुति-विरुद्ध युक्तियों द्वारा मोहित करनेसे मुझे नरकगामी होना पड़ेगा। तथा यह मतवाद भी एक असत् और अत्यन्त हास्यारपद मतवाद है। अब मुझे क्या करना चाहिये?!” ऐसा सोचकर उन्होंने भगवान् विष्णुका ध्यान किया। भगवान् ने उनको दर्शन दिये और तत्काण महामोहको उत्तम कर वृहस्पतिसे बोले—“यह महामोह अपने-आप ही समस्त दैत्योंको वेदसे वहिभूत मतवाद द्वारा मोहित करेगा। तुम कोई चिन्ता न करो।” ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्ज्ञान हो गये। तत्पश्चात् महामोहने दिग्म्बर और रक्ताभ्यरके रूपमें प्रकटित होकर दैत्योंको जिन आपात मधुर युक्तियोंका उपदेश प्रदान किया था, वे ही लोकायत और अहंत ( जैन ) धर्मके रूपमें इस जगत्में प्रचलित हैं। अगले अंकमें इन मतवादोंका विस्तृत विवेचन दिया जायगा।

—श्रीदिविडस्वामी श्रीमद्भक्तिमूलदेव शौकी महाराज

# जैव-धर्म

## नित्यधर्म और इतिहास

( पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या १२, एष्ट १९६८ से आगे )

न्यायरत्न महाशयने देखा कि हरिहरके मनका भाव एक दूसरे ही प्रकारका है अर्थात् हरिहर कटूर वैष्णव नहीं है। यह जानकर उनका मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने कहा—“हरिहर ! तुम यथार्थ ही न्याय-शास्त्रके परिणत हो। तुमने जो कुछ सोचा है, मैं उसे बिलकुल ठीक समझता हूँ। आज कल नवीन वैष्णव धर्ममें जो लहरें उठ रही हैं, उनके चिरुद्ध कुछ भी कहनेका साहस नहीं होता है। काल कलि है, हमें कुछ सावधान रहना चाहिए। इस समय बहुतसे धनी-मानी सजनोंने भी चैतन्यमतमें प्रवेश किया है। वे हम लोगोंका बड़ा अनादर करते हैं, यहाँ तक कि हमें अपना शत्रु समझते हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि थोड़े ही दिनोंमें हम लोगों का व्यवसाय भी नष्ट होने वाला है। अब तो तेली, तमोली, बनिया-बक्काल आदि भी शास्त्रोंका पाठ करने लगे हैं। हमें यह देखकर बड़ा कष्ट होता है। देखो न, बहुत दिनोंसे ब्राह्मणोंने एक ऐसा फन्दा बना रखा था कि ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरे वर्णवाले शास्त्रका अध्ययन नहीं कर सकते थे। सभी हमारी बातें माननेके लिए बाध्य होते थे। परन्तु आज कल सभी जातियोंके लोग वैष्णव बन कर धर्म-तत्त्वों का विवेचन करते हैं। जगह-जगह पर उन लोगोंसे इस विषयमें हमें बड़ी मुहकी खानी पड़ी है। निमाई परिणतने ही ब्राह्मण धर्मका सर्वनाश किया। हरिहर ! तर्क चूड़ामणिने— चाहे पैसेके लोभसे हो अथवा देख सुनकर ही हो—जो कुछ कहा है विलकुल ही ठीक कहा है। वैष्णवोंकी बातें सुनकर शरीरमें आग लग जाती है। ये अब यहाँ तक कहने लगे हैं “कि शंकराचार्यने भगवान्की आज्ञासे मायावाद नामक एक मिथ्या वादकी स्थापना की है

और वैष्णव धर्म ही अनादि सनातन वैदिक धर्म है।” जिस धर्मको उत्पन्न हुए अभी सौ वर्ष भी पूरे नहीं हुए, वही धर्म आज अनादि हो गया ! आश्चर्य है ! पहले नवद्वीप जितना ही अच्छा था, अब उतना ही खराब हो गया है। विशेष कर नवद्वीपके गाढ़ीगाढ़ा नामक स्थानमें कुछ वैष्णव हैं, जो पृथ्वीको तिनकेकी भाँति देखते हैं, उन लोगोंमें दो एक अच्छे परिणत भी हैं। जिनके उत्पातसे ही सारा देश चौपट हो गया। वर्ण-धर्म, नित्य मायावाद, देव-देवियोंकी पूजा आदि सभी लोप होते जा रहे हैं। आजकल लोग आद्ध और पिण्डदान आदि कर्म नहीं करते हैं। अध्यापकोंकी जीविका चले भी तो कैसे चले ?

हरिहरने कहा— ‘महात्मन् ! क्या इसका कोई उपाय नहीं है ? अब भी मायापुरमें छः सात बड़े-बड़े ब्राह्मण परिणत हैं। गंगाके उस पार कुलिया प्राममें भी अनेकों बड़े-बड़े स्मार्त और नैयायिक परिणत हैं। यदि सब लोग मिलकर गाढ़ीगाढ़ा पर आक्रमण करें, तो क्या कुछ फल न निकलेगा ?’

न्यायरत्न ने कुछ गंभीर होकर उत्तर दिया—क्यों नहीं ? खूब हो सकता है; किन्तु ब्राह्मण परिणतोंमें एकता होनी चाहिए। इनमें आजकल बही फूट है। सुना है, कई एक परिणतोंने कृष्णचूड़ामणिको साथ लेकर गाढ़ीगाढ़ावाले वैष्णव परिणतोंके साथ शास्त्रार्थ किया था, किन्तु वैष्णवोंकी परिणत्य प्रतिभा के समने ठहर न सके। ये लोग बुरी तरह परास्त हो कर लौट आये हैं।

हरिहरने कहा—“श्रीमान जी ! आप हमारे अध्यापक हैं। बड़े बड़े अध्यापक आपके छात्र हैं। आपकी लिखी हुई न्यायकी टीकाको पढ़कर बड़े-बड़े विद्वान भी नेक शिक्षा प्राप्त करते हैं। यदि आप चाहें तो

इन बड़े हुए वैष्णवोंको बातकी-बातमें परास्त कर सकते हैं। अतः आप एक बार गोद्र मर्मे चलकर इस बातको प्रमाणित कर दें कि वैष्णव-धर्म विलक्षण आधुनिक और अवैदिक धर्म है। आपके इस कार्यसे ब्राह्मण समाजका बड़ा उपकार होगा। साथ-ही-साथ जुत हो रही हमारी प्राचीन पञ्चोपासनाकी भी रक्षा हो जायगी।

चतुर्भुज न्यायरत्न वैष्णवोंसे तर्क करनेमें मन-ही-मन डरते हैं। जहाँ कृष्ण चूडामणि जैसे परिणत भी पराजित हो गये हैं, वहाँ सम्पव है उनकी भी वही दशा हो। उन्होंने कहा,—“हरिहर ! मैं छायावेश में वहाँ चलूँगा, तुम अध्यापकके रूपमें ही गाढ़ी-गाढ़ीमें तर्काग्निको प्रज्ञवलित करो। पीछे जो कुछ करना होगा मैं देख लूँगा।”

हरिहरने कहा,—“मैं अवश्य ही, आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। अगले सोमवारको ‘बम महादेव’ कहकर उस पार धावा बोल दूँगा।”

सोमवार आ पहुँचा। हरिहर कमलाकान्त और सदाशिव नामक अध्यापकोंको साथ लेकर श्री चतुर्भुज न्याय रत्नके घर पहुँचे और वहाँसे उनको भी साथ लेकर गङ्गा पार कर गोद्र मर्मे पहुँचे। शाम को चार बजे ये लोग “हरि बोल, हरि बोल” बोलते हुए दुर्वासाकी तरह माधवी मण्डपमें पहुँचे। अद्वैतदास उस समय अपनी कुटीमें हरिनाम कर रहे थे। वे उन लोगोंको देखकर कुटीमें बाहर आये और उन लोगोंको पृथक्-पृथक् आसन देकर बड़े प्रेमसे

बैठाते हुए बोले—“कहिये, हमारे लिये क्या सेवा है ?”

हरिहरने उत्तर दिया—“हम लोग वैष्णवोंसे कई एक विषयोंके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करनेके लिये आये हैं।”

अद्वैतदासने कहा—“यहाँके वैष्णव किसी भी विषय पर किसीसे वाद-विवाद करना पसन्द नहीं करते। हाँ, यदि आप लोग साधारण दङ्गसे कुछ पूछें तो कुछ कहा जा सकता है। उस दिन एक अध्यापक कुछ जिज्ञासा करनेके मिस बहुत ही तर्क-वितर्क करने लगे और अन्तमें बहुत ही दुखी होकर लौट गये। खंड, मैं परमहंस बाबासे पूछकर उत्तर दूँगा।” इतना कहकर वे बाबाजीकी कुटीके भीतर चले गये और थोड़ी ही देरमें लौटकर मण्डपमें आसन बिठा दिये।

कुछ ही देरमें परमहंस बाबाजी अपनी भजन कुटीसे निकल कर मण्डपमें आये, और सबसे पहले वृन्दादेवीको दण्डबलकर आगन्तुक अध्यापकोंको प्रणामकर बड़ी ही नम्रतासे बोले—“हम आपकी क्या सेवा करें ?”

न्यायरत्नने उत्तर दिया—“हमें आप लोगोंसे दो एक बातें पूछनी हैं, हम उसीका उत्तर चाहते हैं।”

यह सुनकर परमहंस बाबाजीने श्रीवैष्णवदास को वहाँ बुलाया। वे उनकी आज्ञा पाकर तुरन्त वहाँ उपस्थित हुए, और बाबाजीको प्रणामकर उनके पास ही बैठ गये।

(कमशः)

## श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके तिरोभाव और श्रीश्री जगन्नाथदेवकी रथ-यात्राकाआहान आदरणीय महोदय !

श्रीवैष्णवाद श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके तिरोभाव और श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्राके उपलब्धमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शासामठ, श्रीडदारण गौड़ीयमठ, चिंतसुरामें आगामी १२ आषाढ़ बृहस्पतिवारसे लेकर २२ आषाढ़ रविवार ११ दिनोंतक प्रवचन, कीर्तन, नगर-संकीर्तन, महाप्रसाद वितरण आदि भक्तिके विविध अङ्गोंका विराट अनुष्ठान होगा। धर्मपाण भजनोंसे प्रार्थना है कि वे इस अवसरपर उक्त स्थानपर अविक-से-अधिक संख्यामें उपस्थित होकर समितिके सदस्योंको परमानन्दत और उत्साहित करेंगे। दैहिक योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, बुद्धि और बाणीसे समितिके सेवा-कार्योंके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करके भी अनुगृहीत करेंगे।

शुद्धभक्त-कृपालेश-प्रार्थी—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द